धारा...73 ग्रंथांक...286

आत्म संबोधन गीताञ्जली

(गद्य-पद्यमय)

-आचार्य कनकनन्दी

''अहमेकः खलु शुद्धो दर्शनज्ञानमयः सदारूपी'' (समयसार)
(मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शनज्ञानमय हूँ, अरूपी हूँ)

: पुण्य-स्मरण :

एक परिवार द्वारा चातुर्मास (चितरी 2017) व पिच्छी परिवर्तन तथा सम्मान समारोह के उपलक्ष्य में

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. स्व. श्रीमती पद्माबाई पत्नी स्व. श्री ताराचन्द जी पाटणी
   सौ. वैशाली पाटणी पत्नी श्री चन्द्रशेखर जी पाटणी
   बा.ब्र. रोहित जैन, प्रसन्न, अक्षय पाटणी, औरंगाबाद, महाराष्ट्र
2. श्रीमद् राजचन्द्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र कोबा, गाँधीनगर, गुजरात
3. श्री पारसमल जी अग्रवाल भूतपूर्व वैज्ञानिक, अमेरिका

ग्रंथांक-286 प्रतियाँ-500
संस्करण-प्रथम 2017 मूल्य-51/- रु.

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त
(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा
चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418
(2) डॉ. नारायणलाल कछारा
सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622
E-mail:nlkachhara@yahoo.com

सर्वोच्च संबोधन : आत्म-संबोधन

-आचार्यश्री कनकनंदी जी

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा....., ऐ दिल मुझे बता.....)

स्व-संबोधन ही सर्वोच्च संबोधन, इसी से ही होता है आत्मविकास।
इस हेतु ही अन्य संबोधन श्रेयस्कर, इससे अतिरिक्त अन्य संबोधन बेकार।।

स्वयं के द्वारा स्वयं का ही संबोधन, होता है श्रेष्ठतम् आत्म-संबोधन।
इस हेतु अन्य सभी संबोधन भी निमित्त, किंतु आत्म-संबोधन होता है प्रमुखतम्।। (1)

अंकुर से लेकर वृक्ष व फूल-फल तक, बीज ही होता है प्रमुख।
जल-वायु-मृदा आदि बाह्य (गौण) कारक, तथाहि आत्म-संबोधन प्रमुख कारक।।

सम्यक्त्व प्राप्ति हेतु यथा करणलब्धि प्रमुख, गुरु उपदेश आदि चार गौण कारक।
समवशरण से मरीचिकुमार हुआ बहिष्कार, सिंह अवस्था में हुआ सम्यक्त्व संस्कार।। (2)

बाह्य संबोधनादि से जो करे आत्म-संबोधन, वह करता है स्वगुण-दोष विश्लेषण।
निंदा-गर्हा (व) प्रतिक्रमण-प्रायश्चित्त से, करता है स्व-दोषों का दूरी करण।।

इस हेतु करे ध्यान-अध्ययन मनन-चिंतन, शोध-बोध व आत्मविश्लेषण।
अनुप्रेक्षा व भावना-तप-त्याग आदि द्वारा, स्व-दोषों को करता है निष्कासन।। (3)

क्रोध-मान-माया-लोभ दूर करे, तथाहि दूर करे 'अहंकार' 'ममकार।'
संकल्प-विकल्प व संक्लेश दूर करे, सनग्र सत्यग्राही पावन शांत बने।।

इससे होती है बाह्य प्रवृत्तियाँ क्षीण से क्षीणतर, दूर होते फैशन-व्यसन-पापाचार।
अन्याय-अत्याचार-दुराचार होते दूर, परनिंदा-अपमानादि होते दूर।। (4)

ज्ञान-वैराग्य आदि होते दृढ़ से दृढ़तर, आत्मविशुद्धि भी होती विशुद्धतर।
आत्मशक्ति भी होती प्रबल से प्रबलतर, श्रेणी आरोहण से जीव बने सिद्धेश्वर।।

'आदहिदं कादव्वं' (अतः) तीर्थंकरों ने कहा, 'उद्धरते आत्मनमात्मं' कृष्ण ने कहा।
'आददीवो भव' अतः बुद्धदेव ने (भी) कहा, 'कनक' को अतः आत्म-संबोधन ही/(भी) भाया।। (5)

चितरी, दिनांक 28.10.2017, रात्रि 10.50

संदर्भ-

जैन धर्म में तो अरिहंत भी गुरु हैं तो सिद्ध भी गुरु हैं, आचार्य, उपाध्याय, साधु भी गुरु हैं। इन्हें पंच गुरु या पंच परमेष्ठी कहते हैं। प्रत्येक देश में, काल में, समाज में जो क्रांति हुई है, हो रही है और होगी उसका मूल कारण गुरु ही हैं। गुरु एक क्रांतिकारी, सत्य-शोधक, नवीन-नवीन तथ्य के उन्नायक महापुरुष होते हैं। गुरु के बिना यह कार्य नहीं हो सकता है। अलेक्जेंडर (सिकन्दर) महान् बना गुरु अरस्तु के कारण। चन्द्रगुप्त मौर्य दिग्विजयी बना गुरु कौटिल्य चाणक्य के कारण। शिवाजी, छत्रपति बना गुरु समर्थ रामदास के कारण। मोहनदास, महात्मा गाँधी बने रायचन्द्र जैन के कारण। इस प्रकार ऐतिहासिक काल के पहले ही राजा, महाराजा, सम्राट भी गुरुओं के चरण के सान्निध्य में जाकर ज्ञान-विज्ञान, आत्मविद्या, राजनीति, अर्थशास्त्र, युद्धविद्या, कला-कौशल, गुरुओं से ग्रहण करते आ रहे हैं।

'गुरु बिना सर्वे भवन्ति पशुभिः सनिभाः' गुरु के बिना मनुष्य पशु के सदृश हैं। पशुओं के कोई गुरु नहीं होते हैं इसलिये पशुओं की उन्नति नहीं होती है। इस ही प्रकार मनुष्य-समाज में गुरु नहीं होते तो मनुष्य समाज भी पशुवत् हो जाता।

'गुरु बिना कौन दिखावे वाट, अवघड़ डोंगर घाट'

गुरु के बिना यथार्थ मार्ग प्रदर्शन कौन करेगा? यह संसार कंटकाकीर्ण, अत्यन्त दुरुह, भयंकर जंगलघाटी के समान है। उसको पार करने के लिए गुरु रूपी मार्गदर्शक की नितान्त आवश्यकता है।

आत्मा का गुरु आत्मा

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभष्टिज्ञापकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः।। (34)

Because of its internal longing for the attainment of the highest ideal, because of its understanding of that ideal, and because of its engaging itself in the realisation of its ideal, because of these the soul is its own preceptor!

पुनः शिष्य प्रश्न करता है कि हे गुरुदेव! मोक्ष सुख अनुभव विषय में गुरु कौन है? गुरु कहते है-जो शिष्य निश्चय से सतत कल्याण चाहते और उसके जिज्ञासा के

अनुसार उपाय बताते हैं तथा जो अपवर्तमान है उन्हें पवर्तन करते है उन्हें निश्चय से गुरु कहते हैं। इसी प्रकार होने पर आत्मा का गुरु आत्मा ही है। क्योंकि स्वयं आत्मा स्व-मोक्षसुख की अभिलाषा करता है अर्थात् मोक्ष सुख मुझे मिले ऐसे सत् प्रशंसनीय आकांक्षा को करता है। स्व-आत्मा स्वयं के लिए मोक्ष सुख की जिज्ञासा करता है, जिज्ञासित मोक्ष सुख के उपाय को आत्म-विषय में ज्ञापन देता है अर्थात् मोक्षसुख का उपाय सेवन करो! ऐसे बोध देता है तथा मोक्ष सुखोपाय में स्वयं को नियुक्त करता है। इसी प्रकार सुदुर्लभ मोक्षसुख उपाय में यह दुरात्मा अभी तक प्रवृत्त नहीं हुआ है। ऐसे मोक्ष सुख में अपवर्तमान आत्मा को स्वयं आत्मा प्रवृत्तमान करता है इसलिए निश्चय से आत्मा का गुरु आत्मा ही है।

समीक्षा-यहाँ पर आचार्यश्री ने निश्चयनय से गुरु-शिष्य के बारे में संक्षिप्त सारगर्भित प्रकाश डाला है। व्यवहारनय से आचार्य-उपाध्याय-साधु-गुरु होने पर भी निश्चयनय से आत्मकल्याण में प्रवर्तमान स्वयं ही स्वयं का गुरु है। क्योंकि भले गुरु हितमार्ग का उपदेश करता है, परन्तु प्रवृत्त तो होता है स्वयं जीव। स्वयं आचार्यश्री आगे इस विषय पर विशेष प्रकाश डालेंगे इसलिए यहाँ विशेष वर्णन नहीं कर रहा हूँ तथापि आचार्य अकलंक देव कृत स्वरूप सम्बोधन, से कुछ विषय उदधृत कर रहा हूँ। यथा-

''इत्याद्यनेक, धर्मत्वं, बन्धमौक्षौ तयोः फलम्।
आत्मा स्वीकुरूते तत्तत्कारणेः स्वयमेव तु।।'' (9)

कर्मबंध भवभ्रमण मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम से आस्रव बंध तत्त्व के रूप में होता है और सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, द्वारा संवर निर्जरा की प्रक्रिया से मोक्ष होता है। आत्मा स्वयं विभिन्न कारणों से बंध या मोक्ष की प्रक्रिया किया करता है।

तथा चोक्तम्-

स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद्विमुच्यते।।

यह आत्मा स्वयं अपने राग-द्वेष-मोह आदि भावों के द्वारा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्मों का बंध किया करता है और जब कर्म का उदय होता है तो आत्मा स्वयं करके अच्छे या बुरे फल को भोगा करता

है, चारों गतियों में जन्म-मरण भी यह आत्मा अपने कर्मों के अनुसार किया करता है तथा निर्बन्ध गुरु-द्वारा जिनवाणी सुनकर जब यह शरीर आत्मा के भेदभाव समझकर आत्म का श्रद्धालु बनता है, संसार शरीर और विषय-भोगों से विरक्त होता हैं-यह सम्यग्दृष्टि बनकर स्वयं कर्मों से मुक्त होने के मार्ग पर चल पड़ता है। अपनी आत्मचर्या सम्यक्चारित्र को उन्नत करता हुआ संवर निर्जरा की पद्धति से शुक्लध्यान द्वारा समस्त कर्मों से छूटकर, जन्म-मरण का सदा के लिए विनाश करके मुक्त भी अपने आप होता है। यानी-यह आत्मा स्वयं कर्त्ता, भोक्ता, भ्रमणकर्त्ता और मुक्त होता है।

कर्त्ता यः कर्मणा भोक्ता, तत्फलानां स एव तु।
बहिरन्तरूपायाभ्यां, तेषां मुक्तत्वमेवहि।। (20)

जीव को संसार में घुमाने वाला, उसको सुख-दुःख देने वाला तथा संसार और कर्मों से जीव को मुक्त करने वाला कोई व्यक्ति नहीं है, यह समस्त कार्य आत्मा स्वयं करता है। यह आत्मा स्वयं अपने मिथ्यात्व, राग-द्वेष-मोह, ममतादि भावों से शरीर, परिवार, धन, मकान आदि को अपना करके कर्मबंध किया करता है तथा कर्मों के उदय आने पर उन कर्मों का फल आत्मा को स्वयं भोगना पड़ता है। आत्मा तथा कर्म, नोकर्म (शरीर) का भेद-विज्ञान हो जाने पर सम्यक्त्व, सत्-ज्ञान स्वयं होता है तथा अंतरंग-बहिरंग तपश्चर्या द्वारा कर्मों से मुक्त भी आत्मा स्वयं होता है।

उसके संसार-भ्रमणा तथा संसार छूटने में अन्य कोई सहायक नहीं होता। यह सभी सांसारिक पारमार्थिक आध्यात्मिक कार्य जीव अकेला ही करता है।

कार्य के लिए बाह्य कारण

नाज्ञो विज्ञत्व मायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेधर्मास्तिकायवत्।। (35)

Those not get qualified for the acquisition of truth cannot become the knowers of truth; the knowers of truth cannot become devoid of it; external teachers are useful like eyther which is but helpful in the motion (of moving things).

यहाँ शिष्य प्रश्न करता है कि यदि आत्मा का गुरु आत्मा ही है तब परंपरा गुरु

से शिष्य कैसे शिक्षा प्राप्त करता है? मुमुक्ष के द्वारा धर्माचार्य की सेवा आदि भी नहीं होगी। इसका समाधान आचार्यश्री निम्न प्रकार करते हैं-

हे भद्र! तत्त्वज्ञान जो प्राप्त करने में अयोग्य जो अभव्य हैं वह हजारों धर्माचार्यों के उपदेश से भी प्राप्त नहीं कर पाते।

जिसमें जो स्वभाव है वह स्वभाव की ही अभिव्यक्ति बाह्य क्रिया-निमित्त से होती है परन्तु जिसमें जो स्वभाव नहीं है उसकी अभिव्यक्ति सैकड़ों क्रियाओं से भी नहीं हो सकती है। जैसे कि तोता को पढ़ाने से तोता पढ़ सकता है परन्तु बगुला नहीं पढ़ सकता है। उसी प्रकार जो अंतरंग में-विज्ञप्ति की शक्ति रखता है वहीं अभिव्यक्ति रूप से ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। परन्तु जिसमें यह शक्ति नहीं है वह हजारों से भी अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है।

प्रशमयोगी उस वज्रपात से भी चलायमान नहीं होते हैं जिसके भय से पथिक पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं और विश्व-ध्वनित हो जाता है। क्योंकि वह योगी बोध रूपी प्रदीप से मोहरूपी घना अंधकार को नष्ट करके सम्यग्दृष्टि को प्राप्त कर चुके हैं। ऐसे भयंकर वज्रपात से भी जो चलायमान नहीं होते हैं वे अन्य छोटे-छोटे उपद्रवों से कैसे चलायमान होंगे? कहने का तात्पर्य यह है कि वज्ररूपी बाह्य निमित्त से भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि महायोगी चलायमान नहीं होते हैं।

परन्तु बाह्य अपेक्षा की आवश्यकता होती है, ज्ञान-प्राप्ति के लिए गुरु आदि बाह्य निमित्त मात्र है और शिष्य की योग्यता अंतरंग मुख्य कारण है क्योंकि वही साक्षात् साधक है। इसके लिए उदाहरण है गति परिणत जीव, पुद्गल के लिए जिस प्रकार धर्मास्तिकाय निमित्त होता हैं।

समीक्षा-यह वर्णन आध्यात्मिक दृष्टि से होने के कारण गुरु रूपी निमित्त को ज्ञान प्राप्ति में उदासीन कारण बताया गया है। परन्तु गति के लिए धर्मास्तिकाय जिस प्रकार केवल उदासीन कारण है उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति में गुरु उदासीन कारण नहीं है। यदि ऐसा होता तो तीर्थंकर क्यों उपदेश करते। गणधर भी उपदेश क्यों सुनते? आचार्य भी ग्रंथ क्यों लिखते? बिना देशना-लब्धि सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता? यह सब होते हुए भी अयोग्य शिष्य को अपनी कमी को बताने के लिए, गुरु के अकर्तापन को जताने के लिए यह सब कहा गया है। नहीं तो गुरु शिष्य, गुरुकुल, ग्रंथ आदि की

आवश्यकता क्यों होती।

ध्यान-योग्य, योग्यता एवं परिस्थिति

अभवच्चितविक्षेपः एकान्ते तत्वसंस्थितः।
अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्वं निजात्मनः।। (36)

He in whose mind no disturbances occur and who is established in the knowledge of the self-such an ascetic should engage himself diligently in the contemplation of his soul, in a lonely place.

संयमी-योगी को आलस्य निद्रादि को निरसन (जय) करके योग्य शून्य गृहादि में स्वात्मा का अभ्यास करना चाहिए। बाल्य मनुष्यादि रहित एकांत स्थान में तथा अंतरंग राग-द्वेषादि रहित एकांत-भाव से योगी को निजात्मा का ध्यान करना चाहिए। क्योंकि दोनों प्रकार की एकांत से रहित अवस्था में स्थित होने पर विक्षोभ उत्पन्न होता है जिससे आत्म-ध्यान नहीं हो पाता है।

भारत गौरव-तपो मार्तण्ड आचार्यश्री सन्मतिसागर के समाधि दिवस उपलक्ष्य में काव्यात्मक श्रद्धा सुमन

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर
संघस्थ-आचार्यश्री कनकनंदी गुरुवर

(चाल : मेरे साथी साथ में रहना.....)

दादा गुरुवर सन्मतिसागर...भारत भूमि के श्रमण गौरव...
सूरी भगवन् सत पथगामी...मेरे स्वामी ज्ञानी-ध्यानी...2...(ध्रुव)...

विमल गुरु से दीक्षा पाई...सूरी पदवीं महावीर कीर्ति...
बहु श्रमणों के थे प्रतिपालक...चतुर्विध संघ के नायक...सूरी भगवन्...(1)...

अचल-अडोल-निष्कंप त्यागी...दृढ़ प्रतिज्ञ व स्वाभिमानी...
धीर-गंभीर व दृढ़चित्त...समता-शांति-मौनधारी...सूरी भगवन्...(2)...

भव्य जीवों के तारन हारे...धर्म प्रभावक सबके प्यारे...

कुञ्जवन में समाधि पाये...'सुविज्ञ' जनों से प्रेरणा पाये...सूरी भगवन्...(3)...

चितरी, दिनांक 10.10.2017, रात्रि 9.23

(यह कविता मुनिभक्त श्री मधोक शाह, चितरी की सद्भावना से प्रेरित होकर सृजित हुई।)

कनकनंदी गुरुदेव की सत्यवाणी

बाल कवयित्री-खुशी जैन : कक्षा-10
सुपुत्री-राजेश कुमार जैन

(चाल : आओ सुनाये प्यार की.....)

आओ सुनाये कनक गुरु की कहानी
कोयल से भी मीठी गुरु की वाणी।
गुरु आतम ज्ञान जगाये, आत्मा में ही रम जाये।
आओ सुनाये गुरु की आत्मवाणी

प्रकृति प्रेमी भी है, ज्ञानी-दानी भी है
विश्व के वैज्ञानिक अध्ययन में आते है।
चितरी क्षेत्र को पावन करने चले
बड़े-बच्चों को मैं का ज्ञान कराये। हो...हो...
आओ सुनाये गुरु की भविष्यवाणी

बड़े-हँसमुख ये, गंभीर है ये
सभी के मन को भा जावे
ऐसे वैज्ञानिक है ये। हो...हो...
आओ सुनाये गुरु की सत्यवाणी
तपस्या भी है इनकी अतीव निराली

निन्दा-चुगली से ये परे है गुरु
अच्छाई सच्चाई को अपनाते है गुरु। हो...हो...
आओ सुनाये गुरु की दिव्यवाणी

कमियों को दूर करते है ये गुरु

गहनता से समझाते है ये गुरु। हो...हो...

आओ सुनाये गुरु की अलौकिक वाणी
सरल स्वभावी भी है गौरवशाली।
गुरु आतम ज्ञान जगाये, आत्मा में ही रम जाये।
आओ सुनाये कनक गुरु की कहानी।

क्षमामूर्ति-आचार्यश्री गुप्तिनंदी जी गुरुदेव

-ब्र. रोहित जैन

(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)

गुप्तिनंदी जी गुरुवर को, मेरा शत-शत है वंदन।
प्रज्ञायोगी श्रमण को, मेरा शत-शत है नमन।। (ध्रुव)

'कुंथु' गुरु से दीक्षा लेकर, मोक्ष मार्ग पर बढ़ते हो।
'कनक' गुरु से ज्ञान पाकर, आर्ष का डंका बजाते हो।।

अपनी सौम्य मुस्कान से, करते सबको प्रभावित हो।
सहज-सरलता के धारी, आगम के ज्ञाता हो।। (1)

धमतीर्थ के प्रेरक गुरुवर, जन-जन के उपकारी हो।
अंजनगिरी का जीर्णोद्धार, आपकी प्रेरणा से हुआ।।

ध्यान-अध्ययन शंका-समाधान से, लोगों के दुःख हरते हो।
समता के धारी गुरु, स्व-पर हित करते हो।। (2)

कविता लेखन-विधान रचना में, आपकी है विशेष रुचि।
लाखों श्रावकों की पीड़ा, विधान करने से दूर हुई।।

पंचकल्याणक-विधान द्वारा, देशभर में प्रभावना हो रही।
मैंने मोक्ष पथ पर बढ़ने की, प्रेरणा आप से पाई।। (3)

आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत देकर, उत्थान मेरा किया है।
उपकार है बड़ा आपका, 'कनक' गुरु को पाया है।।

उनसे ज्ञानामृत पाकर, आत्म स्वरूप को जाना है।

'गुप्ति' गुरु के आशीष से ही, 'रोहित' विरागी/(व्रती) बना है।। (4)

चितरी, दिनांक 11.10.2017, 8.15 रात्रि

आचार्यश्री कनकनंदी जी गुरुदेव की आहार पद्धति एवं विश्व में क्रांति...

आज आचार्यश्री कनकनंदी जी गुरुदेव द्वारा पूरे विश्व जैन धर्म का प्रचार-प्रसार बहुत जोरों से हो रहा है। प्रश्न उठता होगा देशभर में तो ठीक है, विहार करके प्रचार करते होंगे पर पूरे विश्व में कैसे? तो सुनो! आचार्यश्री से वैज्ञानिक, चांसलर, जज, प्रोफेसर, डॉक्टर, डी.लिट्, पुलिस ऑफिसर आदि सब पढ़ने, शिक्षा प्राप्त करने आते हैं। विचार करने का विषय है कि सभी उच्च पदवीं धारी लोग गुरुदेव से पढ़कर क्या नहीं कर सकते? ये सब यदि गुरुदेव से पढ़ते है तो एक-एक मनुष्य द्वारा लाखों लोगों का पूरे विश्व में कल्याण होगा। उदाहरण एक जज गुरुदेव से पढ़ता है तो न्याय के क्षेत्र में लाखों-करोड़ों लोगों का फायदा है। यदि एक वैज्ञानिक विदेश में जाकर गुरुदेव के विचारों को विमर्श करता है तो कितनी क्रांति होगी, सोचो!

विचार आता होगा की आहार और विश्व में संबंध क्या? ये सब बताने का मुख्य कारण यह है कि यदि गुरुदेव अस्वस्थ होते है तो पूरे विश्व की कितनी हानि है। जो पूरे विश्व में क्रांति होनी है उसे विराम चिह्न लग जाता है। गुरुदेव सतत स्व-पर हित की भावना भाते हैं। सभी जीव में भगवान् बनने की शक्ति का प्रवचन व उपदेश देते हैं। ये सब क्रियाएँ करने के लिए गुरुदेव का स्वस्थ होना आवश्यक है, अनिवार्य है। गुरुदेव अपने आहार पद्धति-चर्या को लेकर हमेशा सतर्क रहते है। जिससे वे ध्यान-अध्ययन में लीन होकर अपना आत्म कल्याण करें। गुरुदेव के ऐसे पवित्र, शुद्ध भावों को देखकर क्रोधी से क्रोधी तक भी अपना क्रोध आदि को त्यागने के भाव भाता है। इससे समझ में आता ही होगा की गुरुदेव कितनी समता में रहते है। इन सबका कारण है आहारचर्या। गुरुदेव की प्रकृति अत्यंत पित्त व उष्ण है। जिनकी पित्त प्रकृति होती है वो ज्यादा बुद्धिमान होते हैं और उनके भाव भी पवित्र, शुद्ध होते हैं। ये वैज्ञानिकों द्वारा भी प्रमाणित है और नेट पर शोध करने पर भी ये सब जानकारियाँ

प्राप्त कर सकते हैं। हमें तो किसी भी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उनके आचरण भावों की विशुद्धता से ही सब झलकता है। गुरुदेव तो विद्वानों के विद्वान् है। E.Q., I.Q., S.Q. गुरुदेव का पूरे विश्व में श्रेष्ठ है। लेकिन ये सब होते हुए गुरुदेव में अहंकार का एक अंश भी नहीं दिखता है, ये ही निस्पृहता, सरलता, उदारता है। साधारण मनुष्य तो गाड़ी, बंगला आदि आते ही अहंकार से फूल जाते है और फटने में देर नहीं लगती। मगर गुरुदेव इन सबसे परे है, सर्वश्रेष्ठ, ज्येष्ठ है।

ऐसा नहीं की गुरुदेव के ज्ञान की वृद्धि अभी हुई है, इस वृक्ष का बीज तो बाल्यकाल में ही बो दिया था, फल भी तुरंत प्राप्त होते थे। प्रश्न उठता होगा, कैसे? गुरुदेव ने तो बाल्यकाल से ही अध्ययन व अध्यापन का कार्य किया है। जो अनुभव वृद्ध लोगों को भी नहीं होता है वो अनुभव गुरुदेव को बाल्यकाल से है। He is ready to create impossible to possible for all since childhood. गुरुदेव अधिक से अधिक जागते है, अध्ययन करते है। कई बार गुरुदेव की आँखे सूज जाती थी, लाल-लाल हो जाती थी फिर भी अध्ययन करना नहीं छोड़ा। गुरुदेव सोचते है अभी तो मैं विद्यार्थी हूँ, मुझे और ज्ञान प्राप्त करना है। कई बार देखा जाता है कोई नया शब्द सीखता तो उसी का उपयोग हमेशा करता है, घमंड भी करता है। गुरुदेव की तरह भाव रखने वाला इस पूरे विश्व में दूसरा मिलना असंभव-सा लगता है।

गुरुदेव के क्षुल्लक दीक्षा के पश्चात् लगभग पंद्रह वर्ष तक अंतराय भी हुए है। सुपात्र तो हमेशा समता भाव से अंतराय आने पर आहार त्यागते है पर अंतराय नहीं आये इसका ध्यान रखने की जिम्मेदारी हम श्रावकों की है। दिन में एक बार आहार करने वाले सुपात्र का आहार निरंतराय हो ऐसी भावना सतत भानी चाहिए।

'गु' अंधकारस्तु 'रु' तस्य निरोधकम्।
अंधकारः निरोधत्वात् गुरुः इत्याभिधियते।।

गुरु=गु=अंधकार, रु=प्रकाश। जो अज्ञान रूपी अंधकार को हटाकर प्रकाश में ला दे वही गुरु है। वही तारण-तरण है। गुरु गुण के भंडार इसलिये उनकी व्यवस्था में, आहार में, विहार में पूरा ध्यान रखना अनिवार्य है। लगभग बारह महीनों में से 9 महीनों तक बहुत पसीना आता है। अन्य श्रावकों को ठंड लगेगी पर उसी समय भी गुरुदेव पसीने से तरबतर हो जाते, गर्मी होने से पित्त बढ़ता है तो अनुकूल व्यवस्था

होनी चाहिए। इसी कारण गुरुदेव हमेशा 4 या 5 लोगों से ही आहार लेते हैं। विज्ञान की दृष्टि से देखे तो O_2 (Oxygen) की मात्रा कम होती यदि ज्यादा भीड़-भाड़ हो तो सफोकेशन भी बढ़ता है। अन्य भी समस्याएँ बढ़ती जाती हैं।

यदि आहार कक्ष में ज्यादा गंदगी हो तो भी गुरुदेव के लिए समस्याएँ बढ़ती हैं। गंदगी होने पर मक्खियाँ आती हैं, कई बार भोजन में भी गिर जाती है, इसलिये स्वच्छता होना आवश्यक है। गुरुदेव की प्रकृति अन्य सबसे परे है तो उसके अनुसार ही करना चाहिए। भोजन बनने पर उसका निरीक्षण करना चाहिए। अधजला-अधपका कदापि नहीं हो। अपने को लगता है पक गया है फिर भी उसे और पकाना चाहिए क्योंकि साधारण लोगों में और गुरुदेव में जमीन-आसमान का अंतर है। अपनी दृष्टि से कभी नहीं देखना, गुरुदेव की दृष्टि से देखना व समझना, फिर अच्छा बनने पर ही गुरुदेव को देना चाहिए। गुरुदेव अगर बिना सिझा हुआ ले भी लेते हो तो उसी दिन वमन हो जाती है, तो इस पद्धति का व्यवस्थित ध्यान रखना चाहिए।

गुरुदेव के लिए जब भोजन बनाते हो तब पूर्ण सचेत अवस्था में, एकाग्रतापूर्वक बनाना चाहिए नहीं तो नमक की मात्रा ज्यादा हो जाती है या अधिक कम हो जाती है। इसी प्रकार अन्य सब पदार्थ बनाते वक्त इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। आचार्यश्री को खट्टे पदार्थ बिलकुल भी नहीं देना, देने पर स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। टमाटर, नींबू, खट्टे फल, कैरी आदि खट्टे पदार्थ देने के लिए पूछना भी नहीं। इसका परिणाम ऐसा है कि पित्त उष्णता अधिक बढ़ती है और वमन, चक्कर, बेहोशी, दंतक्षय सब एक साथ हो जाता है। इसको भी ध्यान रखना अनिवार्य है। एक बार भी वमन आदि हो जाता है तो उसका प्रभाव कई दिनों व महीनों तक दिखता है। ऐसा न हो कि अपने कारण गुरुदेव अस्वस्थ हो और पूर्ण विश्व की हानि हो।

वर्षों पहले गुरुदेव को हैजा व पीलिया एक-एक बार हो चुका है। रोग होने पर वह कई महीनों तक नष्ट नहीं होता। Precaution is better than cure.....

गुरुदेव को कुछ हो उसके पहले से ही सब क्रम से और सब सीझा हुआ हर दिन देना। लोग सोचते है 'ये खाने पर मुझे कुछ नहीं होता है तो गुरुदेव को कैसे होगा?' ये पूर्णतः विपरीत विचार है क्योंकि गुरुदेव की प्रकृति अन्य से परे व साधारण लोगों से तो हजारों-लाखों गुणा श्रेष्ठ है। स्वास्थ्य बिगड़ने पर सब सचेत हो जाते है

यदि नियमपूर्वक हर दिन सही आहार दिया जाये तो आचार्यश्री हमेशा निरोगी और स्वस्थ ही रहेंगे। स्वाध्याय, लेखन, पढ़ाना आदि में रुचि बढ़ती है और सभी कार्य निर्विघ्नपूर्वक सानंद संपन्न होते हैं यदि ट्रेन का इंजिन ही बंद हो जाये तो पीछे के डिब्बे बढ़ पायेंगे क्या? नहीं। उसी प्रकार गुरुदेव इंजिन है और वो जैसे-जैसे जिस रफ्तार से बढ़ेंगे तो हम सब इंजिन से जुड़े डिब्बे भी बढ़ेंगे। आध्यात्मिक यात्रा, मोक्षमार्ग हर्षोल्लास से प्राप्त होगा।

आहार में देने योग्य पदार्थ व क्रम-आचार्यश्री यदि अस्वस्थ है तो औषधि से सुधार पूर्णतः नहीं होगा क्योंकि गुरुदेव के लिए ''आहार ही सबसे बड़ी औषधि है।'' अन्य सभी साधु-श्रावक पानी ग्रहण कर आहार प्रारंभ करेंगे पर जैसे मैंने पहले लिखा है कि गुरुदेव अन्य सबसे परे है उसी तरह उनका आहार भी दूध से प्रारंभ होता है। गुरुदेव जो भी पदार्थ लेते है वो सब श्रेष्ठतम् होते हैं। उसी प्रकार जो दूध दिया जाता है शुद्ध देसी गाय का ही लेते है। उससे बने पदार्थ जैसे रबड़ी, चावल की खीर, रसगुल्ला, गुलाब जामुन, जलेबी ऐसे गरिष्ट पदार्थ प्रारंभ में देना चाहिए। गुरुदेव के भाव जैसे अन्य से निराले है उसी तरह उनका क्रम, पद्धति भी निराली है।

सबसे पहले दूध से बने पदार्थ और उसके साथ-साथ नमकीन भी। देखने में आता है कि साधारण लोगों द्वारा ग्राह्य किया गया भोजन (नमकीन) अधकच्चा-अधपका बेसन से बना हुआ, बिना नियंत्रण के होता है, तो स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता है और हजारों बार डॉक्टर के पास चक्कर लगाना पड़ता है। यदि गुरुदेव की तरह आध्यात्मिक गुरु कोई उपचार बताते हैं तो कोई मानता नहीं है, अंत समय में उपचार पूछने आते है। गुरुदेव को दिया जाने वाला नमकीन जैसे-पापड़, सेव आदि मूँग के दाल से बनी होनी चाहिए। उसके साथ में कचौड़ी, समोसा, टिकिया भी दे सकते है। उसी समय एक विषय ओर ध्यान देने योग्य है कि हड़बड़ी नहीं होनी चाहिए, कोई पदार्थ देना है तो एक व्यक्ति उसे पूर्णतः देगा। ऐसा नहीं की एक थोड़ा देगा फिर उस पदार्थ को दूसरा, तीसरा, चौथा... भी देगा। शांतता से, अनुशासनपूर्वक आहार देना चाहिए। लोग शुद्धि बोलते है पर आवाज सुनाई भी नहीं देती, मन ही मन में गुनगुनाते हैं। शुद्धि मध्यम आवाज में विनम्रतापूर्वक बोलनी चाहिए। आजकल तो लोग दसों ऊँगलियाँ में अंगूठी, हाथ में कड़ा, घड़ी, ब्रासलेट पहने रहते हैं तो इस

विषय का अवश्य ध्यान देना चाहिए कि हाथ में कुछ न हो और नाखून कटे हो। अपने द्वारा सुपात्र को हानि ना हो इसका विशेष ध्यान देना चाहिए। अन्य कोई इतने सूक्ष्मता से न देखेंगे और न बोलेंगे पर श्रावकों को ये सब याद रखना चाहिए। शुद्धि बोलने के पश्चात् हाथ धोकर ही आहार देना चाहिए और अन्य जगह जैसे बाल, आँख, नाक, कान पर हाथ नहीं लगाना, लगाने पर स्वयं हाथ धोकर आना चाहिए। ऐसी वैज्ञानिक पद्धति सिर्फ गुरुदेव के संघ में ही देखने को मिलेगी, अन्यत्र संभव ही नहीं। आरंभ में मिठाई, नमकीन होने पर दूध देना चाहिए। फिर ड्राय फ्रूट्स अखरोट, बादाम, पिस्ता, किसमीस एवं मनुका। इतने सब ड्राय फ्रूट्स लेने से गुरुदेव का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहता है। ध्यान-अध्ययन, पढ़ना-पढ़ाना, लेखन आदि क्रियाएँ निर्विघ्नपूर्वक संपन्न होती है। विश्व का उद्धार होता है।

साग में परवल सर्वश्रेष्ठ है उसके साथ गिल्का, आल, केला का साग भी देना चाहिए। गुरुदेव थोड़ा पराठा ही लेते है पर उसके साथ ये सब उपरोक्त साग लेते है। इसमें भी विशेषता है जो भी साग होते है उसमें हरी मिर्ची कम मात्रा में पर मसाले सभी प्रकार के डालने चाहिए और जो साग बनते है वो सब घी में ही बनाना चाहिए। सभी पदार्थ घी के ही बने होने चाहिए। गैस के बने भोजन से गुरुदेव को तुरंत उल्टी होती है स्वास्थ्य बिगड़ता है इसलिये शिगड़ी का ही बना हुआ देना चाहिए और गुरुदेव का त्याग भी है। वैज्ञानिकों द्वारा भी इसको मान्यता दी गई है। गुरुदेव के आहार कक्ष में प्रवेश करने से पूर्व ही चूल्हा, गैस बंद हो जाना चाहिए। खिचड़ी या दलिया, ज्यादा पतला भी नहीं ज्यादा गाढ़ा भी नहीं और अच्छे से सीझा हुआ होना चाहिए। ऋतु के दृष्टि से जो फल है जैसे सीताफल, सेब, आम, चिक्कू ऐसे मीठे फल ही देना चाहिए। नारियल की मलाई और पानी के साथ आहार समाप्त होता है। ऐसी है गुरुदेव की आहार पद्धति व क्रम, अन्य से श्रेष्ठ, जेष्ठ, क्लिष्ठ... **-ब्र. रोहित जैन**

आहारदाता भक्तों के अनुरोध से यह कविता बनी-

मेरी साधना हेतु साधन

(सुयोग्य स्वास्थ्य के अनुकूल पथ्य भोजन व निवास मेरे शरीर हेतु औषधि)

-आचार्य कनकनंदी जी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनं' अतएव इसकी मैं सुरक्षा करूँ।
भोगासक्ति या 'अहंकार' 'ममकार' हेतु इसकी मैं न सुरक्षा करूँ।।

शारीरिक प्रवृत्ति मेरी अति ही उष्ण (गर्म) तथाहि हाईपर एसिडिटी है।
इस हेतु मेरा भोजन व निवास स्वास्थ्य रक्षा हेतु अन्य से भिन्न है।। (1)

इसके योग्य आहार-विहार व प्राणायाम-योगासन करूँ।
शीतल शांत व प्रदूषण रहित ग्राम व जंगल में निवास करूँ।।

स्निग्ध (चिकना) सुमधुर प्राकृतिक भोजन सुगंधित (खुशबू) व सही पका हुआ योग्य।
गोदूध व घी निर्मित भोजन, सब्जी फल मेवा ग्रहण योग्य।। (2)

योग्य भोजन ही मेरी सुयोग्य औषधि (है) अन्यथा (नहीं तो) औषधि न काम करे।
मिठाफल परवल (सब्जी) केला सेब अँगुर मुनक्का औषधि रूप में काम करे।।

अधकच्चा आहार व लाल मिर्ची खट्टारस अधिक नमक व शक्कर।
गैस का बना हुआ गरम रुखा-सूखा भोजन बदबू शरीर हेतु है जहर।। (3)

शारीरिक प्रकृति व मेरी प्रवृत्ति अन्य सभी है अति भिन्न।
इसलिये योग्य भक्तजन भी मेरे हेतु न दे पाते सही भोजन।।

सभी को न होता आयुर्वेद ज्ञान तथाहि शरीर विज्ञान व आधुनिक विज्ञान।
जिससे पथ्य आहार बिना शरीर मेरा हो जाता है रुग्ण।। (4)

आहारदाता के विवेक हेतु तथाहि उनके अनुरोध से।
'कनकनंदी' ने वर्णन किया आत्मसाधना के हित से।।

नहीं तो पित्त व गर्मी शरीर में बढ़ती जिससे होता है वमन/(उल्टी)।

चक्कर-पीलिया-हैजा-पेटदर्द-शरीर दर्द आदि रोग अनेक।। (5)

ध्यान-अध्ययन लेखन-प्रवचन-स्वाध्याय आदि न हो पाते।
संघ से लेकर देश-विदेशों में धर्म प्रचार के काम नहीं होते।।
अतएव ही स्व-पर-विश्व कल्याणार्थे शरीर की मैं सुरक्षा करूँ।
अज्ञान-मोह व प्रमाद-आलस्य से शरीर की मैं सुरक्षा न करूँ।। (6)

चितरी, दिनांक 10.10.2017, रात्रि 9.05

(जैन, हिन्दू, बौद्ध आयुर्वेद, आधुनिक विज्ञान व मेरे दीर्घ अनुभव से यह कविता बनी। इस संबंधी विशेष वर्णन मेरे अनेक ग्रंथों में है।)

संदर्भ-

पित्त प्रकृति के मनुष्य का लक्षण

पित्तोद्भवायाः प्रकृतेः सकाशात्। क्रोधाधिकस्तीक्ष्णतरः प्रगल्भः।
सस्वदेनः पीतसिरावितानः। यतः प्रियस्ताम्रतरोष्ठतालुः।। (21)
मेधान्वितः शूरतरोऽप्रधृष्यो। वाग्मी कविर्वाचक पाठकः स्यात्।
शिल्पप्रवीणः कुशलोऽतिधीमान्। तेजोऽधिकः सत्यपरोऽतिसत्वः।। (22)
पीतोऽतिरक्तः शिथिलोष्णकायो। रक्तांबुजौपम्यकरांघ्रियुग्मः।
क्षिप्रं जरार्तः खलताप्रसृष्टः सौभाग्यवान् सततभोजनार्थी।। (23)
स्वप्ने सुवर्णा भरणानि पश्ये। द्गुंगुजास्त्रजोऽलक्तकमांसवर्गान्।
उल्काशनिप्रस्फुरदग्निराशीन्। पुष्पोत्करान् किंशुककर्णिकारान्।। (24)

पित्त प्रकृति का मनुष्य क्रोधी, तीक्ष्ण बुद्धि वाला, चतुर, पसीनायुक्त, पीतवर्ण की सिरायुक्त, प्रिय, लालओष्ठ व तालु से युक्त, बुद्धिमान्, शूर अभिमान या धिटाई (दृढ़ता) से युक्त, वक्ता, कवि, वाचक, पाठक, शिल्पकला में प्रवीण, कुशल, अत्यधिक विद्वान्, पराक्रमी, सत्यशील, बलवान्, पीत, रक्त, शिथिल व उष्ण काय को धारण करने वाला, लाल कमल के समान हाथ-पैर को धारण करने वाला, जल्दी बुढ़ापे से पीड़ित, खलित्व (बालों का उखड़ जाना) रोग से पीड़ित, सौभाग्यशाली, सदा भोजनेच्छु हुआ करता है एवं स्वप्न में सुवर्ण निर्मित आभरण, धुंधची का हार,

लाक्षारस, माँस वगैरह, उल्कापात, बिजली तथा प्रज्ज्वलित, अग्निराशि, किंशुक (पलाश), कार्णिकार (ढाक) (कनेर) आदि लाल वर्ण वाले पुष्प समूहों को देखता है।

(जैन आयुर्वेद-कल्याणकारक)

विशेष-मेरी (आचार्य कनकनंदी) पित्त प्रकृति होने पर भी साधना से विद्यार्थी अवस्था से क्रोध नहीं करता हूँ। क्रोध को क्षमा से परिवर्तन करके तेजस्विता व अनुशासन में प्रयोग करता हूँ।

पित्त के असंतुलन से होते हैं यह रोग

1. ओष (संपूर्ण शरीर में स्वेद और बेचैनी के साथ तीव्र दाह), 2. प्लोष (शरीर के किसी अंग में अग्नि की ज्वाला से जला दिया गया हो ऐसी स्वेदरहित अल्प जलन), 3. दाह (संपूर्ण शरीर में जलन), 4. दवथु (इंद्रियों में जलन), 5. धूमक (मुख से धूम निकलते हुए-सा प्रतीत होना), 6. छाती में जलन और वेदना के साथ खट्टी डकार आना, 7. विदाह (हाथ-पैर और कंधे में अनेक प्रकार की जलन), 8. अंतर्दाह, 9. अंस प्रदेश में जलन, 10. शरीर में ताप का बढ़ जाना, 11. स्वेद का अधिक निकलना, 12. अंगों से गंध का निकलना, 13. अंगावदरण (अंगों में फटने की तरह अनुभव होना), 14. शोणितक्लेद (रक्त में क्लेद अर्थात् कालापन और दुर्गंध होना), 15. मांसक्लेद (माँस का सड़ जाना), 16. त्वग्दाह (त्वचाओं में जलन), 17. त्वगवदरण (त्वचा का फटना), 18. चर्मावदरण (चमड़े का फट जाना), 19. रक्तकोठ (रक्त वर्ण का शोध लिए हुए चकत्ता का होना), 20. रक्त विस्फोट (रक्त वर्ण का विस्फोट (फफोला) होना), 21. रक्तपित्त, 22. रक्तमंडल (रक्त वर्ण का गोलाकार चकत्ता), 23. हरितत्व (नख, मूत्र आदि का हरा होना), 24. नेत्र, नख, मूत्र आदि का हल्दी के समान पीला होना, 25. नीलिका (नेत्र, नख, मूत्र आदि का नीला होना अथवा मुख में या शरीर प्रदेश में नीले वर्ण का दाग का होना), 26. कक्षा, 27. कामला, 28. मुख का तीता होना, 29. मुख से रक्त की गंध, 30. मुख से दुर्गन्ध निकलना, 31. प्यास अधिक लगना, 32. भोजन से तृप्त न होना, 33. मुख का पक जाना, 34. गले का पक जाना, 35. नेत्र का पक जाना, 36. गुदा पक जाना, 37. मूत्रेन्द्रिय का पक जाना, 38. शुद्ध रक्त का निकलना, 39. अंधकार

का प्रवेश करने की तरह अनुभव होना, 40. नेत्र, मूत्र और मल का हरा या पीला होना। चरक संहिता से

आयुर्वेदानुसार रोग के कारण

कार्य की निष्पत्ति-समवायी, निमित्त तीन कारणों से होती है। ये ही तीनों रोग रूपी कार्य बनने में भी आवश्यक होते हैं जैसे दोष-प्रकोप (समवायों) तथा उस दोष का विशिष्ट स्थान में होने वाला संयोग-संप्राप्ति रूप (असमवायों) और दोषों के प्रकोपक कारण मिथ्याहार-विहारादि निमित्त कारण होते हैं।

पित्त प्रकोप के कारण-क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, विदग्ध (अधकच्चा भोजन) पदार्थों का सेवन, मैथुन, कड़वे, खट्टे, नमकीन, तीक्ष्ण, उष्ण, दाहोत्पादक वस्तुओं का सेवन, तिल तैल, खली, कुलथी, सरसों, अलसी तैल, हरे शाक, गोधा, मछली, बकरी, भेड़ का माँस, दही, मट्ठा, कूर्चिका, कांजी, सुरा, खट्टे फल, कट्वर, उष्ण पदार्थ, गर्मी के दिनों में, शरद ऋतु (आश्विन व कार्तिक मास), मध्याह्न, अर्द्धरात्रि, अन्न पचन काल।

विशेष निमित्त कारण-कुछ निमित्त कारण ऐसे भी होते है जिनसे केवल मात्र दोष ही नहीं होता अपितु उस दोष प्रकोप के साथ स्रोतों से दुष्टी होकर स्थान वैगुण्य भी बन जाता है तत्पश्चात् यह स्थान रसादि धातु, पुरीषादिमल, आशय, स्रोत आदि बन जाता है इन्हें हेतु-विशेष या समुत्थान विशेष नाम दिया जाता है।

स एव कुपितो दोषः समुत्थान विशेषतः। बुद्धाहेतु विशेषांश्य-

विशिष्ट रोगोत्पादक रूप स्थानदुष्टी करना यह किन्हीं द्रव्यों का विशिष्ट प्रभाव होता है। वाग्भट, चरक, सुश्रुत आदि आर्ष ग्रंथों में रोग निदान प्रकरण में प्रत्येक रोग के साथ इन रोगोत्पादक हेतु विशेषों की सारणी दी हुई है। चिकित्सा की दृष्टि से इन हेतु विशेषों का बड़ा महत्व है 'संक्षेपतः क्रिया योगो निदान परिवर्जनम्' जिन रोगों के हेतु विशेषों का निर्णय नहीं हो सका वे रोग आज भी वैज्ञानिकों के लिए पहेली बने हुए है। जैसे-कैंसर, यह सर्वविदित है। बीजदुष्टी जिससे कि स्रोतोवैगुण्य बनता है और अंतर्भाव भी विशेष विभिन्न कारण में होता है। कारण शुक्र व रज में नाना प्रकार के शरीर के अवयवों को बनाने वाले बीजभूत परमाणु रहते हैं। उनमें जिस अवयव

का बीजभूत परमाणु वहाँ रहने वाले दोषों से दूषित या उतप्त हो जाता है; उस स्थान की दुष्टि हो जाती है। कभी-कभी बिना कारणों के ही भयंकर रोगोत्पत्ति हो जाती है जबकि ऐसे रोग मातृवंश या पितृवंश में किसी को नहीं होते अतः उनके लिए 'पापकर्म च दुष्कृष्तम्' या 'काश्चित्पूर्वापराधजः।' इस प्रकार बीज दुष्टि या पापकर्म अथवा रोगोत्पादक विशेष आहार-विहार इन कारणों से कुपित दोष इसमें बलवान् तथा प्रभावी हो जाते हैं कि उनसे विशिष्ट रोग को पैदा करने वाला स्रोतोवैगुण्य बन जाता है। अतः उन्हें प्रकृत्यारंभक दोष कहते हैं। हेतु विशेष से कुपित हुए प्रकृत्यारंभक दोष कपोतन्याय से अकस्मात् विशिष्ट स्थान पर आघात कर शरीर की धातुसाम्यता को नष्ट कर देते हैं, जो कि अभिव्यक्ति हो दोष विशिष्ट स्थानों में धावन करने लगते हैं।

विकृत्यारंभक दोषों की स्थिति उपरोक्त से भिन्न होती है। इसके अनुसार लक्षण भी दोषलक्षण, रोगलक्षण, भेद से दो प्रकार के हैं। जिनसे केवल मात्र दोष का ज्ञान हो उन्हें दोषलक्षण कहते हैं तथा रोगलक्षण प्रतिरोग के साथ बतलाया गया है। दोषलक्षण-

पित्त लक्षण-शरीर में जलन, ताप में वृद्धि, व्रण आदि पकना, स्वेदाधिक्य (अधिक पसिना), क्लेद, सड़न, खुजली, स्राव, लालिमा, पीला वर्ण, उष्णता, तीक्ष्णता, सरलता, द्रवाधिक्य, कच्चे माँस के समान गंध, कटु अम्ल रस।

विभिन्न रोगों के उपचार

पित्त ज्वर-(1) पित्त ज्वर रोगी के नेत्रों में दाह रहती है, प्यास ज्यादा होती है, चक्कर आता है, शरीर गर्म रहता है, वेग रहता है, मल-पतला लगता है, वमन होता है, नींद कम आती है, पसीना आता है, मल-मूत्र-नेत्र पीले हो जाते हैं। ये लक्षण प्रायः पित्त ज्वर वाले रोगी के होते हैं। (2) मुनक्का के शर्बत में मिस्री मिलाकर पीने से पित्त ज्वर मिटता है। (3) एक हजार बार धोये हुए घृत को शरीर पर मालिश करने से पित्त ज्वर शांत होता है। (4) नीम के कच्चे पत्तों को पीसकर उसमें पानी डालकर बिलोया जाये फिर जो झाग आये उसको शरीर पर लगाने से पित्त ज्वर मिटता है। (5) एक किलो भर का तीन पाव पानी औटाकर देने से भी पित्त ज्वर मिटता है। (6) तुलसी के पत्तों का शर्बत पिलाने से ज्वर संबंधी घबराहट मिटती है।

कफ-पित्त ज्वर-(1) इस ज्वर वाले रोगी के जीभ और मुँह में कफ लिपटा

रहता है। तंद्रा और खाँसी, अरुचि, प्यास ज्यादा होती है तथा बार-बार शरीर में दाह व शीत ज्यादा लगती है तथा शरीर में पीड़ा होय, चक्कर आवे, भूख नहीं लगे, शरीर जकड़ा हुआ-सा रहता है, इस कफ पित्त-ज्वर वाले की नाड़ी हंस की सी होय अथवा मेंढ़क सरिसी चलती है तथा उसका मूत्र सफेद, लाल व चिकना हो, मल भी हो उस रोगी को कफ-पित्त-ज्वर जानना। (2) जल को उबालकर आठवाँ हिस्सा रहने पर पिलाना चाहिए तथा लंघन करना चाहिए जिससे फायदा होय। (3) दाख, किरमाल की गिरी, धनियाँ, कुटकी, नागरमोथा, पिपलामूल, सोंठ, पीपल इन सबको लेकर कूट करके 3.2 ग्राम (4 माशा) काढा दोनों समय 11 दिन लेने से शूल, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, ज्वर आदि मिटता है।

वात-पित्त ज्वर-(1) वात-पित्त ज्वर वाले रोगी को मूर्च्छा होती है, चक्कर आता है, दाह होती है, नींद नहीं आती है, गला सूखता है, वमन होता है, अंधारी आती है, सारा शरीर दुःखता है तथा प्रलाप करता है ये लक्षण वात-पित्त ज्वर वाले रोगी के होते हैं। (2) चावल की खील के पानी में मिस्री मिलाकर दस दिन देने से वात-पित्त ज्वर नष्ट होता है। (3) सोंठ, कालीमिर्च, पीपल इनको समान भाग लेकर बराबर मिस्री मिलाकर चूर्ण बनाकर 2.4 ग्राम (3 माशा) प्रतिदिन मिस्री की चासनी के साथ 10 दिन लेने से वात-पित्त ज्वर नष्ट होता है।

जीर्ण ज्वर-(1) ज्यादातर शरीर के किसी भीतरी खराबी अथवा बुखार न टूटने पर या कमजोरी के कारण बुखार कम या ज्यादा बना रहता है तब उसे जीर्ण ज्वर कहते है। इस ज्वर में शरीर में दर्द, आलस्य, अरुचि, दुर्बलता, हाडो में फूटन, आँखों व हाथ-पैरों में जलन, आदि अनेक लक्षण जीर्ण ज्वर के होते हैं। जो वर्षों तक भी बने रहते हैं। (2) इस ज्वर में दूध का सेवन हितकर होता है। (3) नीम की छाल का क्वाथ पीने से निरंतर रहने वाला ज्वर तथा किसी औषधि से न मिटने वाला ज्वर मिट जाता है। (4) धनिया और पित्तपापड़ा का क्वाथ पीने से पुराना ज्वर मिटता है। (5) जो ज्वर कुनेन आदि औषधियों से नहीं मिटता है वह ज्वर दारूहल्दी का चूर्ण व क्वाथ लेने से मिट जाता है। (6) वृद्धावस्था में जीर्ण-ज्वर व खाँसी हो तो आँवला का क्वाथ दोनों समय लेने से मिटता है। (7) चौलाई की जड़ को अपने सिर पर बाँधने से भयंकर ज्वर भी मिटता है।

कार्बन उत्सर्जन घटाने की नई पहल, 2040 तक पेट्रोल-डीजल कारें भी बंद होंगी इंग्लैंड में

इंग्लैंड में 2050 तक बंद होगा रसोई गैस का इस्तेमाल, इसकी जगह बायोगैस और हाइड्रोजन से बनेगा खाना

ऐसे समय जब भारत में लकड़ी-कोयला जैसे ठोस ईंधन की जगह रसोई गैस (एलपीजी) के प्रयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है, इंग्लैंड ने 2050 तक रसोई गैस का इस्तेमाल खत्म करने की योजना बनाई है। इसकी जगह कम कार्बन उत्सर्जन वाले विकल्पों का इस्तेमाल किया जायेगा। इसके लिए 21,000 करोड़ रुपये की 'क्लीन ग्रोथ स्ट्रैटजी' बनाई गई है। इससे पहले इंग्लैंड की सरकार 2040 तक, पेट्रोल और डीजल कारें बंद करने की घोषणा कर चुकी है। दरअसल, वहाँ की सरकार ने 30 साल में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन 80 प्रतिशत कम करने का समझौता किया है। यह सब कवायद उसी का हिस्सा है।

इंग्लैंड के घर और ऑफिस को गर्म रखने में भी गैस का इस्तेमाल किया जाता है। नये विकल्प क्या होंगे, अभी यह तय नहीं है। एक विचार यह है कि 2025 से ग्रामीण इलाकों में जो भी नये घर बनाये जाये, उनमें हीट पंप जैसे विकल्पों का इस्तेमाल हो। इसमें पाईप के जरिये जमीन के भीतर की गर्मी का प्रयोग किया जायेगा। कम ऊर्जा खपत वाले घरों के प्रति लोगों को आकर्षित करने के लिए इन पर स्टांप ड्यूटी भी घटाई जा सकती है। ऐसे दूसरे इंसेंटिव देने पर भी विचार किया जा सकता है।

खाना बनाने में हाइड्रोजन या बायोगैस का इस्तेमाल करने का विचार है। इसके लिए ओवर और दूसरे अप्लायंसेज की बनावट बदलने की जरूरत पड़ सकती है। शुरू में यह थोड़ा खर्चीला होगा, लेकिन लंबे समय में इससे पैसे की बचत होगी। इसके अलावा नुकसानदायक गैसों का उत्सर्जन भी नहीं होगा। स्मार्ट एनर्जी स्टोरेज (अत्याधुनिक बैटरी), रिन्युएबल एनर्जी और नई न्यूक्लियर टेक्नोलॉजी में भी खर्च करने की योजना है। इसके अलावा हवा से कार्बनडाइ ऑक्साइड सोखने की नई तकनीक विकसित की जायेगी। इसके लिए नये जंगल भी तैयार किये जायेंगे। इंग्लैंड के ऊर्जा मंत्री ग्रेग क्लार्क और यूके एनर्जी रिसर्च सेंटर के डायरेक्टर जिम वाटसन ने कहा, यह तो तय है कि प्राकृतिक गैस का इस्तेमाल बंद किया जायेगा। लेकिन यह साफ नहीं है कि इसके लिए कौनसी टेक्नोलॉजी सबसे अच्छी होगी।

इलेक्ट्रिक कार में बदल जायेंगी पेट्रोल और डीजल कारें-सरकार ने

पेट्रोल-डीजल से चलने वाली कारों को इलेक्ट्रिक कार में बदलने की भी योजना बनाई है। इसके लिए 8,500 करोड़ रुपये रखे गये हैं। इसमें से कुछ रकम कार-टैक्सी मालिकों को दी जायेगी और कुछ रकम का इस्तेमाल चार्जिंग स्टेशन बनाने में होगा। पेट्रोल पंपों पर भी चार्जिंग प्वाइंट होंगे।

भारत : शहरों में 82 प्रतिशत परिवार करते हैं रसोई गैस का इस्तेमाल- एक रिपोर्ट के अनुसार भारत के शहरी इलाकों में 81.7 प्रतिशत और गाँवों में 32.5 प्रतिशत परिवार रसोई गैस पर खाना बनाते हैं। कोयला और लकड़ी जैसे ईंधन का प्रयोग गाँवों में 63 प्रतिशत और शहरों में 13.6 प्रतिशत परिवार करते हैं। उज्ज्वल स्कीम के तहत 2018-19 तक 5 करोड़ परिवारों को एलपीजी कनेक्शन देने का लक्ष्य रखा गया है।

आचार्यश्री कनकनंदी जी गुरुदेव श्रीसंघ की सरलता/निस्पृहता/निराडम्बरता/उदारता

सृजेता-ब्र. रोहित जैन

(चाल : गंगा तेरा पानी.....)

'कनक' गुरु तव पावन जीवन, हम सबको हर्षाये।
'कनक' गुरु की महान् तपस्या, निस्पृहता दिखलाये।। (ध्रुव)
सरलता है श्रीसंघ में आपके, जन-मन प्रभावित करे।
आचार्य-मुनि-आर्यिका-सुपात्र, तुझसे ज्ञान पाये।
वैज्ञानिक-चैंसलर-प्रोफेसर भी, तुझसे 'मैं' (आत्मा) को जाने।। (1)
आपकी भाषा है प्रकृष्ट, सभी को लगे दुर्बोध।
कविता-साहित्य/(लेख)-ग्रंथों में, भाषा है दुरुह।
आगम को समझने हेतु, भाषा है अपरिहार्य।। (2)
शहर से ग्राम, ग्राम से कांतार, में बढ़ाये पद।
संसारिक लोगों की संकीर्णता से, तोड़ा जनसंपर्क।
एकांत-मौन साधना में रत है, आध्यात्मिक संत।। (3)
ढोंग-पाखण्ड-आडम्बर रहित है, आपका श्रीसंघ।

सहजता-वात्सल्य भाव करता, अन्य को प्रभावित।
आपके आशीर्वाद से ही करता है आत्मचिंतन।। (4)
सर्व विषयों के ज्ञाता गुरु है दंभ से पूर्णतः रहित।
'रोहित' भी आप सम बन जाये, ऐसा दो आशीष।
इतनी उदारता कही न देखी, दिखती है जो यहाँ पर।। (5)

चितरी, दिनांक 10.11.2017, रात्रि 11.35

निर्बंध-निर्बाध से आगे बढ़ रहा हूँ

-आचार्य कनकनंदी0

(चाल : सायोनारा....., क्या मिलिये.....)

समता-शांति युक्त अनुभव से, सदा मोक्ष/(सत्य) मार्ग में बढ़ा।
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा त्यागा, निस्पृह निराडम्बर होकर चला।।
धन-जन-मान-ख्याति-पूजा-लाभ, आकर्षण-विकर्षण व द्वंद्व भय।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश परे, बढ़ रहा हूँ सभी बंधन परे।। (1)
सनम्र सत्यग्राही आत्मविश्वास युक्त, भेदविज्ञान सह सदाचरण/(युक्त)।
सरल-सहजता निर्मलता सह, बढ़ रहा ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा रहित।।
स्वयं में ही पवित्र बनना मुझे, आत्मानुभव युक्त उदारता सह।
स्व-पर विश्व हितकारी भावना सह, मैत्री-प्रमोद-कारुण्य माध्यस्थ युक्त।। (2)
अज्ञानी मोही स्वार्थी जनों से परे, संकीर्ण मत पंथ सीमा से परे।
धनी-निर्धन शत्रु-मित्र बंधन परे, आगे बढ़ना है मुझे भौतिक परे।।
कोई जाने या न माने चिंता से परे, पर प्रपंच अनुभवहीनता परे।
कौन क्या बोलेगा विकल्प परे, मुझे तो प्राप्त करना शुद्धात्मा पूरे।। (3)
अधिकतर लोग (मुझे) न समझ पाते, समझने पर मेरा अनुकरण करते।
जो मुझे समझते (मेरा) वे भक्त/(शिष्य) बनते, पूर्व कमियों का वे
प्रायश्चित्त (स्व-दोष त्याग) करते।।
श्रद्धा-प्रज्ञा अनुभव सेू बढ़ना सदा, दबाव प्रलोभन वर्चस्व त्यागना सदा।
इससे मेरी प्रगति हो रही तीव्र, 'कनक' का लक्ष्य शुद्ध-बुद्ध आनंद।। (4)

विषयानुक्रमणिका

अ.क्र.	विषय	पृ.सं.
1.	सर्वोच्च संबोधन : आत्मसंबोधन	2
2.	भारत गौरव-तपो मार्तण्ड आचार्यश्री सन्मतिसागर के समाधि दिवस उपलक्ष्य में काव्यात्मक श्रद्धा सुमन	7
3.	कनकनंदी गुरुदेव की सत्यवाणी	8
4.	क्षमामूर्ति-आचार्यश्री गुप्तिनंदीजी गुरुदेव	9
5.	आचार्यश्री कनकनंदी जी गुरुदेव की आहार पद्धति एवं विश्व में क्रांति...	10
6.	मेरी साधना हेतु साधन	15
7.	आचार्यश्री कनकनंदी जी गुरुदेव श्रीसंघ की सरलता...	22
8.	निर्बंध-निर्बाध से आगे बढ़ रहा हूँ	23
	आत्म संबोधन	
1.	आनंद वंदना/संकीर्तन	26
2.	स्व-आत्म ध्यान	26
3.	स्व-शक्ति के ध्यान से अनंत शक्ति पाऊँ	28
4.	हे! गुरुवर तेरा पावन जीवन	29
5.	'कनक' तू अनंत प्रज्ञा स्वभावी अतः क्षुद्र प्रज्ञा से अहंकारी क्यों बनोगे!?	29
6.	मेरा परम सकारात्मक लक्ष्य-शुद्ध-बुद्ध-आनंद...!?	33
7.	मैं प्रसिद्धि त्याग से सिद्धि हेतु साधना करूँ	36
8.	आत्म संबोधन हेतु अयोग्य जनों के कारण भी स्व-गुणों को बढ़ाऊँ	37
9.	आत्मध्यान से आनंद आता	39
10.	मैं तीर्थंकरों को क्यों परम आदर्श मानूँ!?	39
11.	स्व-दोष दूर से मैं बनूँ अनंत ज्ञानी व सुखी	41
12.	स्व-स्वरूप को ही मैं पाऊँ/(ध्याऊँ)	42
13.	शांति व शक्ति संवर्द्धन हेतु मैं नवकोटि से खोटा न बनूँ	50
14.	सर्वोदय होना दुर्लभतम	52
15.	सही आस्था (श्रद्धा, विश्वास) अमृत तो गलत आस्था मृत (विष)	53
16.	त्रिविध त्याग से त्रिविध पाऊँ	60
17.	विरोध सापेक्ष अविरोध	61
18.	गुण प्रशंसा व स्व-दोष स्वीकार से विकास तो गुण निंदा व स्व-दोष छिपाने से विनाश	62
19.	हिन्दी भाषा शुद्ध-श्रेष्ठ...क्यों नहीं हो पा रही है!?	68
20.	हाय रे! दयालु भारत तेरी!?	69
21.	जहाँ समस्या वहाँ ही समाधान	73
22.	इच्छा तेरी अजस्र धारा	88
23.	स्मरण (धारणा) हेतु करणीय	92
24.	विवश होते अज्ञानी-मोही	100
25.	अज्ञानी मोही आध्यात्मिक जन	107
26.	हे! जिनवर तेरा परम आदर्श	115
27.	जिनवर के आदर्श अपनाने से मुझे प्राप्त अनुभव व लाभ	116
28.	अभी के मानव उन्नतशील भी नहीं है	117
29.	(मेरे अनुभव) स्व-अज्ञान दोष परिज्ञान से विकास	118
30.	एकांत (जंगल-ग्राम) में मेरे मौन रहने के कारण	120
31.	स्व-वैभव चिन्तन से	127
32.	मेरी भावना-साधना उपलब्धि	128
33.	आचार्य भगवन् श्री कनकनंदी जी गुरुदेव	134
34.	तेरा धर्म तुझमें ही स्थित (मेरा स्वधर्म 'मैं' ही हूँ)	135

आनन्द वंदना / संकीर्तन

आनन्दं आनन्दं वंदे निज-आनन्दम्....आनन्दं आनन्दं वंदे शुद्ध-आनन्दम्....
आनन्दं आनन्दं वंदे बुद्ध-आनन्दम्....आनन्दं आनन्दं वंदे सत्य-आनन्दम्....
आनन्दं आनन्दं वंदे नित्य-आनन्दम्....आनन्दं आनन्दं वंदे आत्म-आनन्दम्....
आनन्दं आनन्दं वंदे द्रव्य-आनन्दम्....आनन्दं आनन्दं वंदे गुण-आनन्दम्....
आनन्दं आनन्दं वंदे ध्रुव-आनन्दम्....आनन्दं आनन्दं वंदे सहज-आनन्दम्....
आनन्दं आनन्दं वंदे श्रद्धा-आनन्दम्....आनन्दं आनन्दं वंदे प्रज्ञा-आनन्दम्....
आनन्दं आनन्दं वंदे ध्यान-आनन्दम्....आनन्दं आनन्दं वंदे दया-आनन्दम्....
आनन्दं आनन्दं वंदे दान-आनन्दम्....आनन्दं आनन्दं वंदे त्याग-आनन्दम्....
आनन्दं आनन्दं वंदे सेवा-आनन्दम्....आनन्दं आनन्दं वंदे साम्य-आनन्दम्....
आनन्दं आनन्दं वंदे शांति-आनन्दम्....आनन्दं आनन्दं वंदे क्षमा-आनन्दम्....
आनन्दं आनन्दं वंदे मृदु-आनन्दम्....आनन्दं आनन्दं वंदे शुचि-आनन्दम्....
आनन्दं आनन्दं वंदे ब्रह्म-आनन्दम्....आनन्दं आनन्दं वंदे मोक्ष-आनन्दम्....
आनन्दं चिन्तदनं आनन्दं कथनम्...आनन्दं स्मरणं आनन्दं कीर्तनम्....
आनन्दं पूजनं आनन्दं लेखनम्....आनन्दं तीर्थं आनन्दं धर्मः...
आनन्दं आत्मा आनन्दं 'कनक'...

चितरी, दिनांक 12.10.2017, रात्रि 8.42

स्व-आत्म ध्यान

निश्चय से मैं मुक्त व युक्त हूँ

-आचार्यश्री कनकनंदी जी

(चाल : तुम दिल की....., सायोनारा.....)

अष्टकर्म से मुक्त हूँ मैं...अष्टगुणों से युक्त हूँ मैं...
राग-द्वेष से मुक्त हूँ मैं...वीतराग से युक्त हूँ मैं...

अंधश्रद्धा से मुक्त हूँ मैं...आत्मश्रद्धा से युक्त हूँ मैं...
कुज्ञान से मुक्त हूँ मैं...सुज्ञान से युक्त हूँ मैं...
कुचारित्र से मुक्त हूँ मैं...सुचारित्र से युक्त हूँ मैं...
अहंकार से मुक्त हूँ मैं...अहंभाव से युक्त हूँ मैं...
ममकार से मुक्त हूँ मैं...साम्यभाव से युक्त हूँ मैं...
अक्षमा से मुक्त हूँ मैं...क्षमाभाव से युक्त हूँ मैं...
विभाव से मुक्त हूँ मैं...स्वभाव से युक्त हूँ मैं...
विषमता से मुक्त हूँ मैं...समता से युक्त हूँ मैं...
परद्रव्य से मुक्त हूँ मैं...स्वद्रव्य से युक्त हूँ मैं...
परगुण से मुक्त हूँ मैं...स्वगुण से युक्त हूँ मैं...
परतंत्र से मुक्त हूँ मैं...स्वतंत्र से युक्त हूँ मैं...
अज्ञानता से मुक्त हूँ मैं...सर्वज्ञता से युक्त हूँ मैं...
अनंतकर्म से मुक्त हूँ मैं...अनंतगुण से युक्त हूँ मैं...
अनंत दुःख से मुक्त हूँ मैं...अनंत सुख से युक्त हूँ मैं...
असत्य से मुक्त हूँ मैं...स्वसत्य से युक्त हूँ मैं...
अब्रह्म से मुक्त हूँ मैं...परंब्रह्म से युक्त हूँ मैं...
अवीर्य (दुर्बलता) से मुक्त हूँ मैं...अनंत वीर्य से युक्त हूँ मैं...
संकीर्णता से मुक्त हूँ मैं...अनंत विस्तार से युक्त हूँ मैं...
संक्लेश से मुक्त हूँ मैं...अनंत शांति से युक्त हूँ मैं...
पंच परिवर्तन से मुक्त हूँ मैं...पंचम गति से युक्त हूँ मैं...
प्रसिद्धि से मुक्त हूँ मैं...आत्मशुद्धि से युक्त हूँ मैं...
परपरिणति से मुक्त हूँ मैं...'कनक' स्वपरिणति से युक्त हूँ मैं...

चितरी, दिनांक 13.10.2017, रात्रि 9.50

स्व-शक्ति के ध्यान से अनंत शक्ति पाऊँ

-आचार्यश्री कनकनंदी जी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

जिया रे! स्व-शक्तियों का ध्यान करऽऽ
जिससे शक्तियाँ होगी जागृत...होंगे तेरे लक्ष्य पूर्णऽऽ...(ध्रुव)...

तेरे अंदर है (भगवत्)/अनंत शक्तियाँ...जो चैतन्य चमत्कार पूर्णऽऽऽ
इन शक्तियों को प्राप्त करने से...बनोगे सच्चिदानंद पूर्णऽऽऽ
त्रैलोक्य अधिपति संपूर्णऽऽऽ...जिया...(1)

न तू दीन-हीन व कायर...न तू तन-मन-इंद्रियऽऽऽ
न तू मानव-पशु-पक्षी-दानव...नहीं तेरे जन्म-जरा-मरणऽऽऽ
ये सभी विभाव परिणमनऽऽऽ...जिया...(2)

समस्त बंधन व सीमा से परे...अनंतानंत अविभागी प्रतिच्छेद पूरेऽऽऽ
लोकालोक व्यापी ज्ञान से पूरे...तुमसे बड़ा न कोई विश्व मेंऽऽऽ
अनंत गुणगण समूह तुझमेंऽऽऽ...जिया...(3)

जाति-मत-पंथ सीमा परे...भाषा-राष्ट्र धनी-गरीब परेऽऽऽ
ऊँच-नीच काला-गोरा परे...समस्त भौतिक-लौकिक परेऽऽऽ
अद्वितीय कल्पना परेऽऽऽ...जिया...(4)

स्वतंत्र-स्वावलंबी-मौलिक तू हो...स्वयंभू-स्वयंपूर्ण-शाश्वत् होऽऽऽ
आत्मजयी तू विश्वजयी हो...निरंजन-निर्विकार-शुद्ध-बुद्ध होऽऽऽ
अमूर्तिक चैतन्य अखण्ड पिंड होऽऽऽ...जिया...(5)

समस्त राग-द्वेष-मोह परे हो...संकल्प-विकल्प-संक्लेश शून्य होऽऽऽ
अक्षय-अव्यय-ध्रौव्य रूप हो...परम सत्य तू भगवान् होऽऽऽ
'कनक' तेरा नहीं नाम-रूप रे!ऽऽऽ...जिया...(6)

चितरी, दिनांक 12.10.2017, रात्रि 8.20

हे! गुरुवर तेरा पावन जीवन

-आचार्य कनकनंदी

(चाल : रे पारस तेरी कठिन डगरिया.....)

हे! गुरुवर तेरा पावन जीवन...राग द्वेष मोह रहित परिणाम।
पावन श्रद्धा है पावन प्रज्ञा...सत्य-समतामय पावनचर्या।। (ध्रुव)

परम पावन स्व-आत्म को माना...शुद्ध-बुद्ध व आनंद जाना।
अतः तेरी श्रद्धा-प्रज्ञा पावन...तदनुकूल तेरी चर्या भी पावन।। (1)

स्वयंभू-स्वतंत्र स्वयं को जाना...ज्ञानदर्शनमय सुख पहचाना।
अव्यय-अव्याबाध रूप पहचाना...अनंत गुणमय स्व को जाना।। (2)

स्वरूप प्राप्ति ही लक्ष्य है तेरा...अतएव मोह-ममत्व छोड़ा।
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्यागा...निस्पृह-निराडम्बर चारित्र तेरा।। (3)

ध्यान-अध्ययन व मौन साधना...शोध-बोध में एकाग्रमना।
आत्म विश्लेषण व आत्मशोधन...आत्मानुभव ही प्रमुख काम।। (4)

शत्रु-मित्र-भाई-बंधु न तेरा...वसुधैवकुटुम्बकं विचार तेरा।
मैत्री-प्रमोद-कारुण्य साम्य धरा...संकल्प-विकल्प-संक्लेश छोड़ा।। (5)

ऐसे पावन भाव-काम से...भगवान् बनते हो अनुक्रम से।
अतएव आप विश्व वंद्य हो...कनकनंदी वंदे तव गुण लब्धये।। (6)

चितरी, दिनांक 14.10.2017, मध्याह्न 3.16

आत्म-संबोधन

'कनक' तू अनंत प्रज्ञा स्वभावी अतः क्षुद्र प्रज्ञा से अहंकारी क्यों बनोगे!?

-आचार्य कनकनंदी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

'कनक' तू अनंत प्रज्ञा स्वभावीऽऽऽ
क्षायोपशमिक इस क्षुद्र प्रज्ञा से...क्यों बनोगे अहंकारीऽऽऽ!?...(ध्रुव)

सर्वज्ञ होते अनंत प्रज्ञाशील...तथापि वे न करते अहंकारऽऽऽ
स्व-ज्ञानानंद में रहते लीन...वे न करते 'अहंकार' 'ममकार'ऽऽऽ
शुद्ध-बुद्ध होते निर्विकारऽऽऽ...कनक...(1)
लक्ष्य तेरा भी है सर्वज्ञ बनना...अतः उनका करो अनुकरणऽऽऽ
द्रव्य क्षेत्र काल भावानुसार चल...अन्य का न करो अनुकरणऽऽऽ
अज्ञानी-मोही का न करो अनुकरणऽऽऽ...कनक...(2)
अज्ञान-मोह से होते अहंकारी...जानते न स्व अनंत वैभवऽऽऽ
क्षायोपशमिक-कर्मज भावों में/(से)...करते 'अहंकार'-'ममकार'ऽऽऽ
कूपमण्डूक सम भाव-व्यवहारऽऽऽ...कनक...(3)
श्रद्धा-प्रज्ञा व आगम द्वारा...तुझे हुआ महान् परिज्ञानऽऽऽ
तू तो अनंत ज्ञान दर्शन सुखमय...राग-द्वेष-मोह-मद से शून्यऽऽऽ
स्व-स्वभाव प्राप्ति हेतु करो प्रयत्नऽऽऽ...कनक...(4)
''ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने'' होता परीषह...इस पर करो विजय प्राप्तऽऽऽ
सनम्र सत्यग्राही ज्ञान पिपासु...बनो निस्पृह वीतरागी मुमुक्षुऽऽऽ
ख्याति-पूजा-लाभ से शून्यऽऽऽ...कनक...(5)
ज्ञानी-गुणी से करो प्रमोद-प्रशंसा...अज्ञानी-अल्पज्ञ से समताऽऽऽ
सर्वज्ञ बनने हेतु सर्वज्ञ को देखो...अल्पज्ञ से न करो तुलना/(प्रतिस्पर्द्धा)ऽऽऽ
''वंदे तद्गुण लब्धये'' करो भावनाऽऽऽ...कनक...(6)
स्व की प्रतिस्पर्द्धा स्वयं से ही करो...बनो स्वयं पर ही विजयीऽऽऽ
आत्म विजय से विश्व विजयी बनो...स्वयं पर ही अधिकार करोऽऽऽ
'कनक' चैतन्य चमत्कार बनोऽऽऽ...कनक...(7)

चितरी, दिनांक 26.10.2017, रात्रि 8.45

(अज्ञानी-मोहीजनों के 'अहंकार' 'ममकार' से अप्रभावी होने हेतु यह कविता बनी।)

(ब्र. सुरेश, ब्र. कपिल, ब्र. रागिनी दीदी (कोबा) व ब्र. संध्या के भावों से प्रभावित यह कविता।)

संदर्भ-

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने। (13)

प्रज्ञा Conceit and; अज्ञान Lack of knowledge, sufferings are caused by the operation of ज्ञानावरणीय, knowledge-obscuring karmas.

ज्ञानावरण के सद्भाव में प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होती हैं, प्रज्ञा क्षायोपशमिकी है, अर्थात् ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होती है, अन्य ज्ञानावरण के उदय के सद्भाव में प्रज्ञा का सद्भाव है अतः क्षायोपशमिकी प्रज्ञा अन्य ज्ञानावरण के उदय में मद उत्पन्न करती है, सर्व ज्ञानावरण कर्म का क्षय हो जाने पर मद नहीं होता। अतः प्रज्ञा और अज्ञान परीषह ज्ञानावरण कर्म के उदय से उत्पन्न होती हैं अर्थात् इन दोनों परिषहों की उत्पत्ति में ज्ञानावरण कर्म का उदय ही कारण है।

केवल ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय होने पर केवलज्ञान होता है केवलज्ञान होने पर किसी भी प्रकार अहंकार नहीं होता है। जो अत्यंत अज्ञानी है, जैसे-एकेन्द्रिय आदि जीव; इनके विशिष्ट क्षयोपशम नहीं होने से तथा तीव्र ज्ञानावरणीय का उदय होने पर विशेष ज्ञान न होने के कारण इनके भी प्रज्ञा और अज्ञान परिषह विशेष नहीं होती है। लोकोक्ति भी है-**''रिक्त चना बाजे घना।''**

भर्तृहरि ने कहा भी है-

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।

ज्ञानलवदूर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति।। (13) (नीतिशतक)

नासमझ को सहज में प्रसन्न किया जा सकता है। समझदार को उससे भी सहज में प्रसन्न किया जा सकता है परन्तु जो न समझदार है, न नासमझ है, ऐसे श्रेणी के मनुष्य को ब्रह्मा भी संतुष्ट नहीं कर सकते।

इसीलिये इंग्लिश में कहावत है-A half mind is always dengerous. जो अल्पज्ञ होते हैं वे भयंकर होते हैं।

"The little mind is proud of own condition." संकीर्ण मन एवं कम बुद्धि वाले अधिक अहंकारी होते है। अल्पज्ञ लोग अहंकार से स्वयं को सर्वज्ञ मानकर सत्य को इंकार करते हैं।

महान् नीतिज्ञ चाणक्य ने बताया है-

मूर्खस्य पंच चिह्नानि गर्वी दुर्वचनी तथा।
हठी चाप्रियवादी च परोक्तं नैव मन्यते।।

मूर्खों के निम्नलिखित पाँच चिह्न है।

(1) अहंकारी होना (2) अपशब्द बोलना (3) हठग्राही (4) अप्रिय बोलना (5) दूसरों के द्वारा कहा हुआ हित सत्य नहीं मानना।

दर्शनमोहांतराययोरदर्शनालाभौ। (14)

अदर्शन Slack-belief by; दर्शनमोहनीय right-belief deluding, and failure to get alms by अन्तराय obstructive, karma.

दर्शनमोह और अन्तराय के सद्भाव में क्रम से अदर्शन और अलाभ परीषह होते हैं।

इस सूत्र में अन्तराय ऐसा सामान्य निर्देश है फिर भी सामर्थ्य से विशेष का संप्रत्यय होता है। यद्यपि इस सूत्र में अन्तराय यह सामान्य निर्देश है तथापि यहाँ सामर्थ्य से (अलाभ के ग्रहण से) लाभान्तराय विशेष का ही ज्ञान होता है। अर्थात् अदर्शन परीषह दर्शनमोह के उदय से और अलाभ परीषह लाभान्तराय के उदय से होती है; ऐसा जानना चाहिये। क्योंकि सूत्र में अलाभ का ग्रहण है।

चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः। (15)

Nakedness; Ennui; woman; Sitting or posture; Abuse; Begging; Respect and disrespect sufferings are due to; चारित्रमोहनीय right-Conduct deluding karmas.

चारित्रमोह के सद्भाव में नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार-पुरस्कार परीषह होते हैं-

प्रश्न-पुरुषवेद-स्त्रीवेद के उदय निमित्त से होने वाली नाग्न्य, अरति, स्त्री, आक्रोश, याचना, सत्कार-पुरस्कार परीषहों को चारित्रमोहनीय के उदय से मानना ठीक भी है परन्तु निषद्या परीषह भी मोहनीय कर्म के उदय में कैसे हो सकती है?

उत्तर-निषद्या परीषह भी मोहनीय कर्म के उदय से होती है, प्राणी पीड़ा कारण होने से। मोहनीय कर्म के उदय से प्राणी-हिंसा के परिणाम होते हैं अतः प्राणी-हिंसा

की परिपालना कारण होने से निषद्या परीषह को भी मोहोदयहेतुक ही समझना चाहिये। अर्थात् अप्रत्याख्यान कषाय के उदय से निषद्या परीषह होती है।

मेरा परम सकारात्मक लक्ष्य-शुद्ध-बुद्ध-आनंद...!?

-आचार्यश्री कनकनंदी

(चाल : आत्मशक्ति से ओतप्रोत....., भातुकली.....)

मैं हूँ शुद्ध मैं हूँ बुद्ध मैं तो आनंद रूप हूँ...
मैं हूँ सत् मैं हूँ चित् मैं तो शाश्वत रूप हूँ...
यह है मेरा स्वभाव रूप अभी तो विभाव रूपी हूँ...
इसलिये मैं बना हूँ अशुद्ध तथाहि अबुद्ध दुःखी हूँ...
शुद्ध होने पर बनूँगा बुद्ध तथाहि आनंद रूपी भी...
परम सत्यमय चित् बनूँगा तथाहि शाश्वत रूपी भी...
इस हेतु ही साधना करूँ नहीं-अन्य भी प्रयोजन...
सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि डिग्री ख्याति-पूजा-लाभ-काम...
इस हेतु न भौतिक निर्माण तथाहि परम्परा कायम...
भीड़ जमाना या वर्चस्व जमाना नहीं है मेरा प्रयोजन...
ये सब तो अनंत बार किया ये सब मेरा मल है...
इससे मैं अनंत दुःख भोगा अतः ये सभी त्याज्य है...
जितने अंश में त्याग रहा हूँ उतना बन रहा हूँ शुद्ध...
जितने अंश में शुद्ध बन रहा हूँ उतना बन रहा हूँ बुद्ध...
जितने अंश में बुद्ध बन रहा हूँ उतना बन रहा हूँ आनंद...
इससे मुझे अनुभव होता मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध-आनंद...
अन्यथा ऐसा न होता संभव अनुभव में भी नहीं आता...
अशुद्ध भाव से न बुद्धत्व बढ़ता, न आनंद भाव अधिक होता...
अशुद्ध भाव के मूल कारण, राग-द्वेष-मोहादि त्यागूँ...

ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा-वैरविरोध परनिंदा त्यागूँ...

स्व-अनुभव व पर-अनुभव से, तथाहि आगम ग्रंथों से...

देश-विदेश के इतिहास से, यह परिज्ञान हुआ मुझमें...

राजा-महाराजा-चक्रवर्ती भी, साधु बनते शुद्ध आनंद हेतु...

इससे विपरीत भोगासक्त राजादि के कर्म बनते दुःख हेतु...

शुद्ध द्रव्यों में होते प्रकट रूप में अनंतानंत गुणगण...

शुद्ध परमाणु में (यथा) होते अनंत गुण, अशुद्ध स्कंध में न तथागुण/(अनंत गुण)...

ऐसा ही मैं जब शुद्ध होऊँगा, मैं बनूँगा बुद्ध व आनंद...

ऐसा ही मेरा महान् लक्ष्य, 'कनक' को न ग्राह्य क्षुद्र लक्ष्य...

चितरी, दिनांक 23.10.2017, रात्रि 8.20

संदर्भ-

ज्ञान दर्शनमयी शुद्ध चेतना ही स्वतत्त्व

ज्ञान दर्शनमयं निरामयं मृत्युसंभवविकारवर्जितम्।
आमनन्ति सुधियेऽत्र चेतनं सूक्ष्ममव्ययमपास्तकल्मषम्।। (89)

ज्ञानीजन तो जन्म-मरण आदि विकारों से रहित, निरामय, सूक्ष्म, अव्यय और कर्ममल रहित ज्ञान-दर्शनमयी शुद्ध चेतना को ही अपना मानते हैं।

ध्यान से कोटि भवों के कर्म नाश

अभ्यस्यतो ध्यानमनन्यवृतेरित्थं विधानेन निरन्तरायम्।
व्यपैति पापं भवकोटिबद्धं महाशमस्येव कषाय जालम्।। (93)

इस प्रकार पूर्वोक्त विधान से निरंतराय ध्यान का अभ्यास करने वाले एकाग्रचित्त पुरुष के कोटि भवों के बंधे पाप नष्ट हो जाते हैं जैसे कि महान् प्रशम भाव के धारक के कषायों का समूह नष्ट हो जाता है।

तपोविधानैर्बहुजन्मलक्षैर्यो दह्यते संचित कर्म राशिः।
क्षणेन स ध्यानहुताशनेन प्रवर्तमानेन विनिर्मलेन।। (100)

धन्य पुरुष है ध्यानी

निरस्तसर्वेन्द्रियकार्यजातो योदेहकार्यं न करोति किंचित्।
स्वात्मीयकायोद्यतचित्तवृत्तिः सध्यानकार्यं विदधाति धन्यः।। (103)

जो पुरुष सर्व इन्द्रियों के विषयभूत कार्य समूह को दूर करके देह के कुछ भी कार्य को नहीं करता है और अपने आत्मीय कार्य के करने में उद्यत चित्तवृत्ति होकर ध्यान के कार्य को करता है, वह पुरुष धन्य है।

ध्यानी के लक्षण

न रोषो न तोषो न मोषो न दोषो न कामो न कम्पो न दामो न लोभ।
न मानो न माया न खेदो न मोहो यदीयेऽस्ति चित्ते तदीयेऽस्ति योगः।। (106)

जिसके चित्त में न द्वेष है, न राग है, न चोरी का भाव है, न अन्याय आदि कोई दोष है, न काम भाव है, न कंपन्न है, न दंभ है, न लोभ है, न मान है, न माया, न खेद है और न मोह है; उसी पुरुष के चित्त में ध्यान हो सकता है।

समाधिविध्वंसविधौ पटिष्ठं न जातु लोकव्यवहारपाशंम्।
करोतियो निस्पृहचित्तवृत्तिः प्रवर्तते ध्यानमनुष्य शुद्धम्।। (108)

जो पुरुष समाधि के विध्वंस करने में अति कुशल ऐसे लोक-व्यवहार रूप जाल को कभी भी नहीं करता है, और जिसकी चित्तवृत्ति सर्व संसारी कार्यों से निस्पृह है उसी पुरुष के निर्मल ध्यान होता है।

विधीयते ध्यानमवेक्षमाणेयद्भू तबोधैरिह लोककार्यम्।
रौद्रं तदार्त्तं च वदिन्त सन्तःकर्मद्रुमच्छेदनबद्धकांक्षा।। (109)

जो बोध रहित अज्ञानी पुरुष लौकिक कार्य की इच्छा रखते हुए ध्यान करते हैं, उसे कर्मरूप वृक्ष को छेदने में कमर बाँधकर उद्यत संत जन रौद्र और आर्त्तध्यान कहते हैं।

संसारिकं सौख्यमवाप्तुकामैध्यानं विधेयं न विमोक्षकारि।
न कर्षणं सस्यविधायि लोके पलाललाभाय करोति कोऽपि।। (110)

मोक्ष के सुख को करने वाला ध्यान सांसारिक सुख के पाने की इच्छा से ज्ञानियों को नहीं करना चाहिए। क्योंकि लोक में धान्य को उत्पन्न करने वाला कृषि

कार्य कोई भी भूसे (पलाल) के लाभ के लिए नहीं करता।

अभ्यासमानं बहुधा स्थिरत्वं यथैति दुर्बोधमहीप शास्त्रम्।
नूनं तथा ध्यानमपीति मत्वाध्यानं सदाऽभ्यस्यतु मोक्तु कामः।। (111)

जैसे अत्यंत कठिन भी शास्त्र निरंतर अनेक प्रकार से अभ्यास किये जाने पर स्थिरता को प्राप्त होता है/जाता है, उसी प्रकार से ध्यान को भी मानकर मुक्ति पाने के इच्छुक पुरुष को निश्चय से ध्यान का सदा अभ्यास करना चाहिए।

अवाप्य मानुष्यमिदं सुदुर्लभं करोति यो ध्यानमनन्यमानसः।
भनक्ति संसारदुरन्तपंजरं स्फुटं स सद्यो गुरुदुःखमन्दिरम्।। (112)

इस अति दुर्लभ मनुष्य भव को पा करके जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर ध्यान को करता है, वह भारी दुःखों के गृहरूप इस दुःखदायी संसार पिंजर को शीघ्र भेदता है।

मैं प्रसिद्धि त्याग से सिद्धि हेतु साधना करूँ

-आचार्य कनकनंदी जी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू स्व-लक्ष्य साधा करऽऽ
तेरा स्व-लक्ष्य है स्व-उपलब्धि...अन्य सभी त्याग करऽऽ...(ध्रुव)

स्वात्मोपलब्धि ही सिद्धि होती...प्रसिद्धि की चाह है बाधाकरऽऽ
संकल्प-विकल्प व संक्लेश जनक...होती है प्रसिद्धि की चाहऽऽ
इससे होता लक्ष्य अति दूरऽऽ...जिया...(1)

चक्रवर्ती की भी प्रसिद्धि न रहे...होने पर भी वज्र लिखितऽऽ
एक चक्री का नाम अन्य चक्री मिटाये...स्व-उपलब्धि है ध्रुव धामऽऽ
टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभावी तुमऽऽ...जिया...(2)

प्रसिद्धि हेतु धन-जन चाहिए...मंच-माईक-पंडाल-भोजनऽऽ
पत्रिका-होर्डिंग-माला-गाजा-बाजा...शाल-प्रशस्ति व मान-सम्मानऽऽ
याचना-दबाव व प्रलोभन/(भय)ऽऽ...जिया...(3)

कौन आया/(गया) व कौन न आया...कौन संतोष कौन नाराजऽऽ
मानो-मनोओ-खाओ-खिलोओ...बंदरबाट सम होता कामऽऽ
अन्यथा उपार्जित धन समऽऽ...जिया...(4)

धन-मान हेतु प्रयोग जो ज्ञान/(धर्म)...वह अति निकृष्ट कामऽऽ
माँ को वेश्या बना के धनार्जन सम...होता इह-परलोक पतनऽऽ
नवकोटि से करो प्रसिद्धि विसर्जनऽऽ...जिया...(5)

छाया सम है प्रसिद्धि जानो...मृगमरीचिका या शुकर विष्ठाऽऽ
अहंकार की अभिव्यक्ति मानो...निदान से मिथ्यात्व जानोऽऽ
इच्छानिरोध तप से भिन्नऽऽ...जिया...(6)

समता से तू श्रमण बनो...निस्पृह-निराडम्बर-निराभिमानऽऽ
ध्यान-अध्ययन व मौन-ज्ञान...आत्मशुद्धि से पाओ निर्वाणऽऽ
'कनक' करो आत्म रमणऽऽ...जिया...(7)

चितरी, दिनांक 15.10.2017, रात्रि

आत्म-संबोधन हेतु

अयोग्य जनों के कारण भी स्व-गुणों को बढ़ाऊँ
(रागी-मोही के कारण मैं स्व-आध्यात्मिक गुण न त्यागूँ)

-आचार्य कनकनंदी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

तेरी आध्यात्मिकता व तेरी वीतरागता को कोई जाने/(माने) या न जाने (माने)।
तू तो इसे ही बढ़ाता जाना, अज्ञानी मोही क्या जाने/(माने)।।

अनादिकालीन मोह-अज्ञान से आक्रांत/(ग्रसित) जो जीव होते।
वे तुझे क्या जान पायेंगे जो स्वयं को भी नहीं जानते।। (1)

जन्मान्ध यदि सूर्य को न देख पाते सूर्य न होता है दोषी।
अज्ञानी-मोही यदि तुझे न जान पाते इसमें तुम न हो दोषी।।

अन्य के दोषों से अप्रभावी हो स्व-गुणों को तू बढ़ाओ।
उनसे भी न अयोग्य भाव-व्यवहार उनसे भी शिक्षा ले लो।। (2)

उनकी अयोग्यता से स्व-गुण, न छोड़ो किन्तु बढ़ाते चलो।
स्व-उपलब्धियों का गौरव करो, मोह-मदादि भी न करो।।

अयोग्य भी अन्य को स्व-समान बनाने हेतु नवकोटि से काम करते।
सूर्य यथा अंधों के कारण तम न बने तथाहि तू काम करो।। (3)

हर महापुरुष दूसरों के दोषों से सीख लेकर आगे बढ़ते।
दूसरों को कष्ट न देते किन्तु सभी का ही मंगल चाहते।।

डॉक्टर वैद्य सम तू काम करो दोषी बिना बने उपकार करो।
स्व-पर दोष-गुण से शिक्षा लेकर, 'कनक' सदा आगे बढ़ो।। (4)

अज्ञानी-मोही तो सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि से महान् मानते।
ख्याति-पूजा-लाभ-भोग-वर्चस्व आदि से स्वयं को ही महान् मानते।।

भले वे किसी भी क्षेत्र में होते धर्म-राजनीति-व्यापार आदि में।
परिवार-समाज-राष्ट्र-शिक्षा-न्याय-नौकरी आदि में।। (5)

इनसे विपरीत लक्ष्य तुम्हारा अतएव करूँ इनसे विपरीत काम।
'मुनिनां भवति अलौकिक वृत्ति' से तुम्हें करना है आत्म कल्याण।।

धर्म प्रभावना हेतु भी तू न त्याग स्व-आध्यात्मिकता (व) वीतरागता।
समता-शांति व आत्मविशुद्धि निस्पृह-निराडम्बर-सरल-सहजता।। (6)

जिससे स्व-गुण में बाधा पहुँचे ऐसे बाह्य समस्त काम तू त्याग।
विधान-पंचकल्याणक-प्रवचन-शिविर-मंदिर निर्माणादि त्याग।।

स्व-उपलब्धि ही तेरी परम उपलब्धि जो विश्व में सर्वोच्चतम है।
अनंत ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यमय अक्षय-अव्याबाध गुणमय है।। (7)

चितरी, दिनांक 16.10.2017, रात्रि 8.30

आत्मध्यान से आनंद आता

-आचार्य कनकनंदी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

बड़ा सुख पाता आनंद आता...जब मैं आत्मध्यान करता।
संकल्प घटता-विकल्प नशता...संक्लेश भाव भी दूर होता।।

राग-द्वेष घटते मद-मोह छटते...वैर-विरोध भी नहीं होते
ईर्ष्या-घृणा छटती कामना जाती...नवकोटि से न परनिन्दा होती।।

विभाव घटते स्वभाव प्रगटे...सुज्ञान सहित सुख बढ़ते।
बाह्य दृष्टि घटती अंतःदृष्टि बढ़ती...बाह्य प्रवृत्ति जाती अंतरंग बढ़ती।। (1)

आकर्षण घटता विकर्षण छूटता...अस्थिर भाव भी नाश होता।
आत्मशक्ति बढ़ती विकृति घटती...शांति समता की वृद्धि होती।।

आकुलता घटती-व्याकुलता छटती...निराकुलता की वृद्धि होती।
कामना छटती भावना बढ़ती...आध्यात्मिक विशुद्धि वृद्धि होती।। (2)

पर-परिणति जाति आत्म-परिणति होती...आध्यात्मिक गरिमा की वृद्धि होती।
आत्मा ही भाता परभाव न सुहाता...स्व-शुद्धात्मा का अनुभव होता।।

अहंकार नशता 'सोऽहं' भाव होता...'सोऽहं' से परे अहं भाव होता।
अतएव 'कनक' स्व का ध्यान करता...सिद्ध स्वरूप का मैं सहारा लेता।। (3)

चितरी, दिनांक 19.10.2017, पूर्वाह्न 10.50 (महावीर निर्वाण महोत्सव)
(यह कविता मणिभद्र के कारण बनी।)

मैं तीर्थंकरों को क्यों परम आदर्श मानूँ!?

(तीर्थंकरों से मुझे प्राप्त शिक्षाएँ-प्रेरणाएँ)

-आचार्य कनकनंदी

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की.....)

मेरे परम आदर्श होते हैं तीर्थंकर, उनसे मुझे शिक्षा मिले प्रचुर।
अन्य सभी से भी मैं शिक्षा ही लहूँ, गुण-गुणी सभी से मैं शिक्षा ही लहूँ।।

सभी तीर्थंकर होते राजकुमार, राजा से लेकर होते हैं चक्रधर।
वज्रवृषभ नाराच संहनन धारी शरीर, अतुल बलधारी चरम शरीर।। (1)

तीन ज्ञानधारी वे होते जन्म से, देव द्वारा पूजित वे होते गर्भ से।
ज्ञान-वैराग्य से वे साधु बनते, सर्व ऋद्धि मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त करते।।

पूर्व से भी अधिक वे श्रेष्ठ बनते, चक्रवर्ती-इंद्र से भी ज्येष्ठ बनते।
तथापि-निस्पृह-मौन से ध्यान करते, ख्याति-पूजा-लाभ से परे रहते।। (2)

कुधर्मी-विधर्मी व अधर्मी प्रति, निंदा करने वाले व विरोधी प्रति।
गाली देने वाले दुष्ट-दुर्जन प्रति, समता रखते कष्ट देने वालों के प्रति।।

पूर्व परिवार व मित्र-भक्तों के प्रति, आहारदाता भक्तजनों के प्रति।
पंचकल्याण करने वाले देवादि प्रति, मोहित न होते कष्ट दूर करने वालों के प्रति।। (3)

आत्मविश्वास व ज्ञान चारित्र द्वारा, समता-शांति-धैर्य-क्षमा के द्वारा।
ध्यान-अध्ययन-शोध-बोध के द्वारा, आत्मविशुद्धि करते साधना द्वारा।।

आत्म उपलब्धि हेतु ही साधना करते, सांसारिक सुख की कामना न करते।
स्वर्ग की कामना तो दूर ही रही, मोक्ष की कामना तक नहीं करते।। (4)

भय-आशा-स्नेह-लोभ से परे रहते, संकल्प-विकल्प-संक्लेश नहीं करते।
स्व-स्वरूप में लीन रूप-ध्यान करते, घाती कर्म नाशकर वे सर्वज्ञ बनते।।

समवशरण की रचना देव स्वेच्छा से करते, अनासक्त भाव से वहाँ विराजमान हो।
वीतराग भाव से दिव्य ध्वनि खिरती, राग-द्वेष-मोह रिक्त वाणी खिरती।।

अंत में कर्म नाशकर मुक्त बनते। 'कनकनंदी' उनके ये गुण चाहते
/(अतएव 'कनक' उन्हें आदर्श मानते)।। (5)

चितरी, दिनांक 18.10.2017, रात्रि 8.58

(यह कविता भूपेश, ब्र. खुशपाल, ब्र. संध्या, दीपेश आदि के कारण बनी।)

आत्म-विश्लेषण व आत्म-सुधार हेतु कविता

स्व-दोष दूर से मैं बनूँ अनंत ज्ञानी व सुखी

(मैं अभी अनंत ज्ञानी व सुखी नहीं हूँ इससे सिद्ध होता है मैं अभी भी दोषी हूँ)

-आचार्य कनकनंदी

(चाल : आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....)

अनंत ज्ञान सुख न मिले अभी तक इससे सिद्ध हुआ (है) मैं दोषी।
दोष दूर कर ज्ञान सुख पाऊँ अन्य हेतु क्यों बनूँ मैं रागी-द्वेषी।।

अनादि काल से ही पर-परिणति से बना हूँ मैं दोषी।
स्व-परिणति से बनूँ निर्दोषी जिससे बनूँ मैं अनंत सुखी।। (1)

स्व-परिणति हेतु चक्रवर्ती तक त्याग करते है राज्य वैभव।
निस्पृह-निराडम्बर-समताधारी बनकर दूर करते स्व-विभाव।।

शांति-कुंथु-अरहनाथ तो तीन-तीन पदवीं के धारी थे।
साधु बनकर निस्पृह रूप से मौन से दोष दूर हेतु पुरुषार्थ किये।। (2)

पार्श्वनाथ व महावीर स्वामी पर मुनि अवस्था में घोर उपसर्ग हुए।
चौषठ ऋद्धि व चार ज्ञान सहित भी दोषी के प्रति साम्य रहे।।

दोषी प्रति भी नवकोटि से ईर्ष्या-घृणादि न भाव-व्यवहार किये।
समता-शांति-क्षमा-सहिष्णुता से आत्मशुद्धि में लीन रहे।। (3)

जिससे वे सर्व दोष रहित होकर अनंत ज्ञान सुख प्राप्त किये।
अंत में मोक्ष प्राप्त कर शुद्ध-बुद्ध-आनंद अविनाशी हुए।।

मैं भी अनुभव कर रहा बालकाल से स्व-दोष दूर से ज्ञान सुख बढ़े।
दोष होने पर ज्ञान सुख घटे इससे मुझे दोष दूर हेतु शिक्षा मिले।। (4)

मनोविज्ञान व कर्म सिद्धांत आयुर्वेद व शरीर विज्ञान से।
प्रायश्चित्त-ग्रंथ व कानून आदि से ऐसा ही मुझे ज्ञान मिले।।

इसलिए स्व-दोष दूर हेतु मैं बालकाल से ही प्रयत्नरत हूँ।

कोई जाने या न जाने कोई कहे या न कहे स्व-दोष दूर करता हूँ।। (5)

भावात्मक दोष यथा राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोधादि को विशेष दूर करूँ।
परनिंदा-अपमान-वैर-विरोध आदि दोषों को मैं दूर करूँ।।

बाह्य तप-त्याग आदि यथायोग्य करूँ जिससे शरीर न रोगी बने।
अत्यंत पित्त व शारीरिक गर्मी होने से शरीर न रोगी बने।। (6)

'शरीर माद्यं खलु धर्म साधनं' के अनुसार शरीर (की) सुरक्षा करूँ।
प्रमाद मोहवश शरीर का भी मैं लालन-पालन नहीं करूँ।।

भावात्मक दोष दूर बिना केवल शरीर दण्ड से न ज्ञान सुख बढ़े।
सुद्रव्य क्षेत्र काल भाव के आश्रय से 'कनक' स्व-भाव दोष दूर करे।। (7)

(बाह्य धर्म प्रभावना भी मैं ऐसी न करूँ जिससे मेरे दोष बढ़े,
धन-जन आदि पराश्रित काम न करूँ जिससे मेरे दोष बढ़े।)

चितरी, दिनांक 17.10.2017, रात्रि 9.27 (धन्य तेरस)
(स्वरूप चौदस की पूर्व रात्रि)

स्व-स्वरूप को ही मैं पाऊँ/(ध्याऊँ)

-आचार्य कनकनंदी

(चाल : तुम दिल की....., सायोनारा.....)

मैं ही मुझको देखूँ-सुनूँ...मैं ही मुझको जानूँ...
मैं ही मुझ पर विश्वास करूँ...मैं ही मुझको पाऊँ...
मैं ही मुझको उपदेश देऊँ...मैं ही मुझको ध्याऊँ...
मैं ही मुझ पर नियंत्रण करूँ...मैं ही मुझको ध्याऊँ...
मैं ही मेरा विश्लेषण करूँ...मैं ही मुझको सुधारूँ...
मैं ही मेरा अध्ययन करूँ...शोध-बोध भी करूँ...
मैं ही मेरी अनुपेक्षा करूँ...मेरी भावना भी मैं करूँ...
मेरा ही आह्वान मैं ही करूँ...मेरा अवतरण मैं करूँ...

मेरी स्थापना मुझमें करूँ...सन्निधि करण मेरा मैं करूँ...
पूजा-आराधना-प्रार्थना करूँ...वंदे तद्गुण लब्धये करूँ...
विभाव भाव को दूर मैं करूँ...स्वभाव प्राप्ति हेतु ये सब करूँ...
क्षमा भाव को प्राप्त मैं करूँ...क्रोध कषाय को दूर मैं करूँ...
मार्दव भाव को प्राप्त मैं करूँ...अष्टमद को दूर मैं करूँ...
आर्जव भाव को प्राप्त मैं करूँ...मायाचारी को दूर मैं करूँ...
शुचि भाव को प्राप्त मैं करूँ...लोभ-कषाय को दूर मैं करूँ...
सत्य स्वरूप को प्राप्त मैं करूँ...असत्य-मोह को दूर मैं करूँ...
शुद्धात्मा को प्राप्त मैं करूँ...अनात्मा भाव को दूर मैं करूँ...
ऐसी ही मेरी पूजा-प्रार्थना करूँ...सर्वज्ञ आज्ञानुसार मैं करूँ...
बाह्य प्रपंच मैं सर्वथा त्यागूँ...संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्यागूँ...
स्वयं में ही मैं स्वयं ही रहूँ...कनकनंदी मैं स्व-स्वरूप वरूँ...

चितरी, दिनांक 18.10.2017, अपराह्न 4.58
(कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी) (स्वरूप चौदस)
(यह कविता भूपेश, ब्र. खुशपाल, ब्र. संध्या, दिपेश आदि के कारण बनी।)

संदर्भ-

मुमुक्षु का कर्त्तव्य

अविद्याभिदुरं ज्योति, परं ज्ञानमयं महत्।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः।। (49)

That excellent and supreme light of the self is the destrayer of ignorance, the seekers after saluation should always angage themselves in questioning others about it, in ectionately deeking it and in realizing if by actual exprionce!

पूर्वोक्त विषय को आचार्यश्री और भी बताते है-मुमुक्षु को सतत उस आनंद स्वरूप, ज्ञानमय, आत्म प्रकाशक अविद्या रूपी अंधकार को भेदन करने वाली परम्

चितज्योति, विघ्नों को छेदन करने वाला महान् विपुल, इन्द्रादि से पूज्यनीय चैतन्य प्रकाश के बारे में गुरु आदि से सतत पूछना चाहिए तथा उसकी इच्छा करनी चाहिए एवं उसका ही अनुभव करना चाहिए। आचार्य गुरुदेव ने शिष्य के प्रति परम करुणा से प्लावित होकर शिष्य को आत्म तत्त्व के बारे में विशेष ज्ञान कराने के लिए व उसमें स्थिर करने के लिए आत्म तत्त्व का सविस्तार यहाँ वर्णन किया है।

समीक्षा-संसारी जीव अनादि अनंत काल से स्व-आत्म स्वरूप को भूलकर उससे दूर होकर, उससे च्युत होकर पर द्रव्य में ही रचा है, पचा है, अनुभव किया है और अपनाया है। अतएव ऐसे चिर-विस्मरणीय उपेक्षित स्व-आत्म द्रव्य और आत्म स्वरूप का ज्ञान, श्रद्धान, आचरण और उसकी उपलब्धि बहुत ही दुरूह है, क्लिष्ट साध्य है। कुंदकुंद देव ने कहा भी है-

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलभो विहत्तस्स।। (4) समयसार

(सुदा) अनंत बार सुनी गई है (परिचिदा) अनंत बार परिचय में आई है (अणु भूदा) अनंत बार अनुभव में भी आई है। (सव्वस्स वि) सब ही संसारी जीवों के (काम भोग बंध कहा) काम शब्द से स्पर्शन और रसना, इन्द्रिय के विषय और भोग शब्द से घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिय के विषय लिए गए हैं उनके बंध या संबंध की कथा अथवा बंध शब्द के द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध एवं उसका फल नर-नारकादि रूप लिया जा सकता है, इस प्रकार काम, भोग और बंध की कथा जो पूर्वोक्त प्रकार से श्रुत-परिचित और अनुभूत है इसलिए दुर्लभ नहीं किन्तु सुलभ है। (एयत्तस्स) परन्तु एकत्व का अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के साथ एकता को लिए हुए परिणमन रूप जो निर्विकल्प समाधि उसके बल से अपने आपके अनुभव में आने योग्य शुद्धात्मा का स्वरूप है उस एकत्व का (अवलंभों) उपलंभ संप्राप्ति अर्थात् अपने उपयोग में ले आना (णवरि) वह केवल (ण सुलभो) सुलभ नहीं है (विहतस्स) कैसे एकत्व का? रागादि से रहित एकत्व का। क्योंकि वह न तो कभी सुना गया न कभी परिचय में आया और न अनुभव में ही लाया गया।

उपर्युक्त कारण से आचार्यश्री ने कहा कि-हे मोक्ष सुख के इच्छुक भव्य! तुम सतत मोक्ष स्वरूप स्व-आत्म तत्त्व का चिंतन, मनन, श्रवण, निनिध्यासन, ध्यान

करो। ग्रंथकार ने समाधितंत्र में व्यक्त करते हुए कहा है-

तद् ब्रूयात्तत्परान्पृच्छेत् तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्।।

योगी को चाहिए कि वह उस समय तक आत्म ज्योति का स्वरूप कहे, उसी के संबंध में पूछे, उसी की इच्छा करे और उसी में लीन होवे जब तक अविद्या (अज्ञान) जन्य स्वभाव दूर होकर विद्यामय न हो जावे।

अष्टावक्र गीता में भी प्रकारान्तर से इस विषय का प्रतिपादन मुनि अष्टावक्र ने निम्न प्रकार से किया है-

एको विशुद्धबोधोऽहमिति निश्चयवह्निना।
प्रज्वाल्याज्ञानगहन वीतशोकः सुखीभव।। (9)

फिर शिष्य प्रश्न करता है कि, आत्मज्ञानरूपी अमृतपान किस प्रकार करूँ? तब गुरु समाधान करते हैं कि हे शिष्य! मैं एक हूँ अर्थात् मेरे विषे सजाति-विजाति का भेद नहीं और स्वगत भेद भी नहीं है, केवल एक विशुद्ध बोध और स्व-प्रकाश रूप हूँ, निश्चय रूपी अग्नि से अज्ञान रूपी वन को भस्म करके शोक, मोह, राग, द्वेष, प्रवृत्ति, जन्म, मृत्यु इनके नाश होने पर शोक रहित होकर परमानंद को प्राप्त हो।

यत्र विश्वमिदं भाति कल्पितं रज्जुसर्पवत्।
आनन्दपरमानन्दः स बोधस्त्वं सुखंचर।। (10)

यहाँ शिष्य शंका करता है कि, आत्मज्ञान से अज्ञानरूपी वन के भस्म होने पर भी सत्यरूप संसारी की निवृत्ति न होने के कारण शोक रहित किस प्रकार होऊँगा? तब गुरु समाधान करते हैं कि, हे शिष्य! जिस प्रकार रज्जु के विषे सर्प की प्रतीति होती है और उसका भ्रम प्रकाश होने से निवृत्ति हो जाती है, उसी प्रकार ब्रह्म के विषे जगत् की प्रतीति अज्ञान कल्पित है, ज्ञान होने से नष्ट हो जाती है। तू ज्ञानरूप चैतन्य आत्मा है, इस कारण सुखपूर्वक विचर। जिस स्वप्न में किसी पुरुष को सिंह मारता है तो वह बड़ा दुःखी होता है परन्तु निद्रा के दूर होने पर उस कल्पित दुःख का जिस प्रकार नाश हो जाता है उसी प्रकार तू ज्ञान से अज्ञान का नाश करके सुखी हो। फिर शिष्य प्रश्न करता है कि हे गुरो! दुःख रूप जगत् अज्ञान से प्रतीत होता है और ज्ञान से उसका नाश हो जाता है परन्तु सुख किस प्रकार प्राप्त होता है? तब गुरु समाधान

करते है कि हे शिष्य! दुःखरूपी संसार के नाश होने पर आत्मा स्वभाव से ही आनंद स्वरूप हो जाता है, मनुष्य लोक से तथा देवलोक से आत्मा का आनंद परम उत्कृष्ट और अत्यंत अधिक है।

परमध्यान के कारण

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह किंवि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं।। (56)
मा चेष्ठत मा जल्पत मा चिन्तयत किमपि येन भवति स्थिरः।
आत्मा आत्मानि रतः इदं एव परं भवति ध्यानं।।

Do not act, do not talk, do not think, so that the soul may be attached to and fixed in itself. This only is excellent meditation.

हे ज्ञानीजनों! तुम कुछ भी चेष्टा मत करो अर्थात् काय के व्यापार को मत करो, कुछ भी मत बोलो और कुछ भी मत विचारो। जिससे कि तुम्हारा आत्मा अपने आत्मा में तल्लीन स्थिर होवे, क्योंकि जो आत्मा में तल्लीन होता है वही परम ध्यान है।

जिस प्रकार स्थिर जल में बड़ा पत्थर डालने पर जल अस्थिर होता है और छोटा पत्थर डालने पर भी जल अस्थिर होता है भले अस्थिरता में अंतर हो। उसी प्रकार किसी भी प्रकार के संकल्प-विकल्प, चिंतन, कथन, क्रियादि से आत्मा में अस्थिरता/कम्पन्न/चंचलता/क्षोभ हो जाता है। इसलिये श्रेष्ठ ध्यान के लिए समस्त संकल्पादि को त्याग करके आत्मा में ही पूर्ण निश्चल रूप से स्थिर होना चाहिए। अतः आचार्यश्री ने कहा है कि-

'मा चिठ्ठह मा जंपह मा चिंतह किंवि' हे विवेकी पुरुषों! नित्य निरंजन और क्रिया रहित निज-शुद्ध-आत्मा के अनुभव को रोकने वाला शुभ-अशुभ चेष्टा रूप काय की क्रिया को तथा शुभ-अशुभ अंतरंग-बहिरंग रूप-वचन को और शुभ-अशुभ विकल्प समूह रूप मन के व्यापार को कुछ मत करो।

'जेण होइ थिरो' जिन तीनों योगों के रोकने से स्थिर होता है। वह कौन? 'अप्पा' आत्मा। कैसा होकर स्थिर होता है? 'अप्पम्मि' स्वाभाविक शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव जो परमात्म तत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान आचरण रूप अभेद रत्नत्रयात्मक परम ध्यान के अनुभव से उत्पन्न सर्व प्रदेशों को आनंददायक ऐसे सुख के अनुभव

रूप परिणति सहित स्व-आत्मा में रत, तल्लीन, तच्चित्त तथा तन्मय होकर स्थिर होता है। 'इणमेव परं हवे ज्झाणं' यही जो आत्मा के सुख स्वरूप में तन्मयपना है, वह निश्चय से परम उत्कृष्ट ध्यान है।

उस परम ध्यान में स्थित जीवों को जो वीतराग परमानंद सुख प्रतिभासित होता है वही निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप है। वह अन्य पर्यायवाची नामों से क्या-क्या कहा जाता है, सो कहते हैं। वही शुद्ध आत्म-स्वरूप है, वही परमात्मा का स्वरूप है, वही एक देश में प्रकटता रूप विवक्षित एक शुद्ध-निश्चयनय से निज-शुद्ध आत्मानुभव से उत्पन्न सुख रूपी अमृत जल के सरोवर में राग आदि मलों से रहित होने के कारण परमहंस स्वरूप है। परमात्मा ध्यान की भावना की नाममाला में इस एक देश व्यक्ति रूप शुद्ध नय के व्याख्यान को यथासंभव सब जगह लगा लेना चाहिए ये नाम एकदेश शुद्ध निश्चयनय से अपेक्षित है।

वही परम ब्रह्म स्वरूप है, वही परम विष्णु रूप है, वही परम शिव रूप है, वही परम बुद्ध स्वरूप है, वही परम जिन स्वरूप है, वही परम निज आत्मोपलब्धि रूप सिद्ध स्वरूप है, वही निरंजन स्वरूप है, वही शुद्धात्म दर्शन है, वही परम अवस्था स्वरूप है, वही परमात्म दर्शन है, वही ध्यान करने योग्य शुद्ध पारिणामिक भाव रूप है, वही ध्यान भावना रूप है, वही शुद्ध चारित्र है, वही परम पवित्र है, वही अंतरंग तत्त्व है, वही परम तत्त्व है, वही शुद्ध आत्म द्रव्य है, वही परम ज्योति है, वही शुद्ध निर्मल स्वरूप है, वही स्वसंवेदन ज्ञान है, वही परम तत्त्वज्ञान है, आत्मानुभूति है, वही आत्मा की प्रतीति है, वही आत्म संवित्ति आत्म-संवेदन है, वही निज आत्म स्वरूप की प्राप्ति है, वही नित्य आनंद है, वही नित्य पदार्थ की प्राप्ति हैं, वही परम समाधि है, वही परम आनंद है वही नित्य आनंद है वही स्वाभाविक आनंद है, वही सदानंद है, वही शुद्ध आत्म पदार्थ के अध्ययन रूप है, वही परम स्वाध्याय है, वही निश्चय मोक्ष का उपाय है, वही एकाग्र चिंता निरोध है, वही परमज्ञान है, वही शुद्ध उपयोग है, वह ही परम-योग समाधि है, वही भूतार्थ है, वही परमार्थ है, वही निश्चय ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्य रूप निश्चय पंचाचार है, वही समयसार है, वह ही अध्यात्मसार है, वही समता आदि निश्चय षट् आवश्यक स्वरूप है, वह ही अभेद रत्नत्रय स्वरूप है वही वीतराग सामायिक है, वह ही परम शरण रूप उत्तम मंगल है,

वही केवल ज्ञानोत्पत्ति का कारण है, वही समस्त कर्मों के क्षय का कारण है, वही निश्चय दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, आराधना स्वरूप है वही परमात्मा भावना रूप है, वही परम अद्वैत है, वही अमृत स्वरूप परम धर्म ध्यान है, वही शुक्ल ध्यान है, वही राग आदि विकल्प रहित ध्यान है, वही निष्कल ध्यान है, वही परम स्वास्थ्य है, वही परम वीतरागता है, वही परम समता है, वही परम एकत्व है, वही परम भेदज्ञान है, वही परम समरसी भाव है, इत्यादि समस्त रागादि विकल्प-उपाधि रहित, परम आह्लाद एक सुख लक्षणमयी ध्यान स्वरूप निश्चय मोक्षमार्ग को कहने वाले अन्य बहुत से पर्यायवाची नाम परमात्म तत्त्व ज्ञानियों के द्वारा जानने योग्य होते हैं।

आध्यात्मिक-भावना

अनासक्ति से शुद्ध ध्यान

नाह कस्यपि मे कश्चिन्न भावोऽस्ति बहिस्तनः।
यदैषा शेमुषी साधोः शुद्ध ध्यानं तदा मतम्।। (69) अमि. श्राव.

'मैं किसी का नहीं हूँ, और न कोई बाहरी पदार्थ मेरा है,' ऐसी बुद्धि जब साधक के प्रकट होती है, तभी उसके शुद्ध ध्यान माना गया है।

राग-द्वेषादि के अभाव से ध्यान की योग्यता

रागद्वेषमदक्रोधलोभमन्मथमत्सराः।
न यस्य मानसे सन्ति तस्य ध्यानेऽस्ति योग्यता।। (70)

राग-द्वेष-मद-क्रोध-लोभ-काम-विकार और मत्सर भाव जिस पुरुष के मन में नहीं होते हैं, उसके ध्यान की योग्यता होती है।

राग-द्वेषादि से मन में अस्थिरता

रागद्वेषादिभि क्षिप्तं मनः स्थैर्यं प्रचाल्यते।
कांचनस्येव काठिन्यं दीप्यमानैर्हुताशनैः।। (71)

राग-द्वेषादिक से विक्षिप्त हुए मन की स्थिरता चलायमान हो जाती है। जैसे कि दैदीप्यमान अग्नि से सोने की कठिनता भी पिघल जाती है।

कषाय सहित मन में ध्यान असंभव

विद्यमाने कषायेस्ति मनसि स्थिरता कथम्।
कल्पांतपवनैः स्थैर्यं तृणं कुत्र प्रपद्यते।। (72)

मन में कषाय के विद्यमान रहने पर स्थिरता कैसे संभव है? प्रलय काल के पवन के द्वारा उड़ाये गये तृण स्थिरता को कहाँ पा सकते हैं।

शुद्धात्मा-ध्यान से कर्म की निर्जरा

अक्षय्यकेवलालोकविलोकित चराचरम्।
अनन्तवीर्यशर्माणममूर्तमनुपद्रवम्।। (73)
निरस्त कर्म संबंध सूक्ष्म नित्यं निरास्रवम्।
ध्यायतः परमात्मानमात्मनः कर्म निर्जरा।। (74)

जिन्होंने अक्षय केवल ज्ञान के द्वारा सर्व चर-अचर जगत् को देख लिया है, जो अनंत बल और सुख के धारक हैं, अमूर्त हैं, उपद्रव रहित हैं, जिन्होंने सर्व कर्मों के संबंध को दूर कर दिया है, मनःपर्ययज्ञान के द्वारा भी नहीं जाना जाने से सूक्ष्म स्वरूपी है, नित्य है और कर्मों के आस्रव से सर्वथा रहित है, ऐसे सिद्ध परमात्मा का ध्यान करने वाले जीव के कर्मों की निर्जरा होती है।

स्वात्मा से स्वात्मा के ध्यान से मोक्ष

आत्मानमात्मना ध्यायन्नात्मा भवति निर्वृतः।
घर्षयन्नात्मनाऽऽमानं पावकी भवति द्रुमः।। (75)

आत्मा के द्वारा आत्मा को ध्याता हुआ यह आत्मा निवृत्त होता हुआ स्वयं सिद्ध परमात्मा बन जाता है। जैसे कि अपने आपसे घर्षण को प्राप्त हुआ वृक्ष अग्नि बन जाता है।

देहादिक से आत्मा को भिन्न नहीं जानने वाले साधु को भी मोक्ष नहीं

न यो विविक्तमात्मानं देहादिभ्यो विलोकते।
स मज्जति भवांभोधौ लिगंस्थोऽपि दुरुत्तरे।। (76)

जो पुरुष देहादिक से अपने आप को भिन्न नहीं देखता है वह मुनि लिंग में

स्थित होकर भी इस दुस्तर संसार-समुद्र में डूबता है।

शांति व शक्ति संवर्द्धन हेतु मैं नवकोटि से खोटा न बनूँ

-आचार्य कनकनंदी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

मन से मैं न खोटा विचार करूँ, वचन से मैं न खोटा उच्चार करूँ।
काय से मैं न खोटा काम करूँ, करूँ न कराऊँ न अनुमोदना करूँ।।

इससे पहले मेरा खोटा होता (है) अन्य का खोटा होना अन्य पर निर्भर है।
स्व-पर-विश्व हित की भावना भाऊँ, यथायोग्य नवकोटि से काम (मैं) करूँ।।

मन खोटा होने से वचन खोटा संभव, मन सही तो वचन होता उत्तम।
काय भी तदनुकूल होता प्रवृत्त, करना-कराना-अनुमत प्रवृत्त।। (1)

मन को पावन अतः मैं सदा (करूँ) बनाऊँ, वचन भी पावन भाव से कहूँ।
काय की प्रवृत्ति भी संयम भाव से करूँ, करूँ-कराऊँ-अनुमोदना करूँ।।

वचन से कहूँ या नहीं कहूँ, काय से करूँ या नहीं भी करूँ।
कृत-कारित-अनुमत करूँ न करूँ, मन से पावन सदा मैं बनूँ।। (2)

मौन में वचन की न होती प्रवृत्ति, स्थिर आसन में न काय की प्रवृत्ति।
इसमें कृत कारित अनुमत नहीं है, ध्यान अवस्था में संभव नहीं है।।

इससे पाप प्रवृत्ति की निवृत्ति होती, शक्ति की क्षति भी नहीं होती।
शांति व शक्ति की भी वृद्धि होती, 'कनकनंदी' की आत्मिक उन्नति होती।। (3)

चितरी, दिनांक 19.10.2017, रात्रि 8.45 (महावीर निर्वाण पर्व)

संदर्भ-

विविध स्तरों के दोष

अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्र कर्मणः।
व्यधामनाचार मपि प्रमादतः-प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये।। (8)

O World-victor! I purify myself by performing expurgation

for all foolish deviations from rectitude due to indifference whether it be Atikrama, Vyatikrama, Atichara and Anachara.

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! मैंने कुबुद्धि से सुचारित्र रूपी क्रिया का प्रमाद के कारण जो अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार किया हो, उसकी शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण करता हूँ।

प्राप्त शिक्षाएँ-किसी भी अंतरंग एवं बहिरंग कारणों के वश से प्रमाद जनित भाव-व्यवहारों से ज्ञात-अज्ञात से भी कुछ न कुछ दोष उत्तम चारित्र में लगना संभव है। ऐसी परिस्थिति में उस दोष को दूर करना प्रत्येक सुखकामी, विकास को चाहने वाले महानुभावों का नैतिक-आध्यात्मिक कर्त्तव्य है क्योंकि जब तक जीव छद्मस्थ (असर्वज्ञ, अवीतरागी, घाति कर्म से युक्त) रहता है तब तक पूर्व के उपार्जित कर्म के उदय से दोष उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इसलिए आध्यात्मिक प्रगति, मानसिक शांति के लिए, शारीरिक व मानसिक रोग दूर करने के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा/सम्मान/शुद्धता आदि के लिए प्रतिक्रमण सहज-सरल आध्यात्मिक उपाय है।

विविध स्तरों के दोषों के कारण

क्षतिं मनः शुद्धि विधेरतिक्रमं-व्यतिक्रमं शील व्रतेर्विलङ्घनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं-वदन्त्यनाचार मिहाति सक्तताम्।। (9)

Atikrama is the defiling of the pure condition of mind, and Vyatikrama is transgression of pure mental action, Atichara, O Lord! is indulgence in sensual desires, and Anachara is defined as excessive attachment (to them).

भावार्थ-हे प्रभु! इस लोक में (1) मानसिक शुद्धि की विधि में क्षति होने को अतिक्रम, (2) शीलव्रत (सदाचार) के उल्लंघन को व्यतिक्रम, (3) विषयों में प्रवृत्ति करने को अतिचार, (4) विषयों में अत्यंत आसक्त होने को अनाचार कहते हैं।

प्राप्त शिक्षाएँ-आत्मिक शुद्धि का इच्छुक दोषों के विभिन्न स्तर को जानता है/जानना चाहिए। क्योंकि दोषों के स्तर/डिग्री/मात्रा के अनुसार ही उसको दूर करने के उपाय भी तदनुकूल होते हैं। ''जो पिण्डे सो ब्रह्माण्डे,'' ''यथा मति तथा गति'' के अनुसार दोष या गुण का अंकुर मन-भाव से ही होता है और विकास क्रम से वृद्धिगत होता है। यदि बीज का अभाव ही हो या अंकुर होने ही नहीं दिया जाए तो आगे का

विकास क्रम भी संभव नहीं है। इसलिए दोष के विकास क्रम को नहीं चाहने वाला महानुभाव प्रथमतः मानसिक अशुद्धता को ही उत्पन्न नहीं करता है/उत्पन्न होने को ही रोक देता है।

इससे विपरीत पापी/दोषी/अन्यायी/अत्याचारी/दुराचारी/आतंकवादी मन में उत्पन्न अशुद्धता को नहीं रोकता है/रोकना नहीं चाहता है/या जान-बूझकर बढ़ाता है। मन में अशुद्धता का उत्पन्न होना ही (1) अतिक्रम है।

इस दोष के विकास क्रम में सदाचार का उल्लंघन करके (2) व्यतिक्रम के स्तर पर पहुँच जाता है। पुनः उस स्तर से बढ़ता हुआ विषयों (क्रोध-मान-माया-लोभ, हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य, परिग्रह आदि) में प्रवृत्ति करता है। इस स्तर को (3) अतिचार कहते हैं।

''अभ्यास से गुणवत्ता में वृद्धि होती है'' के नियमानुसार अतिचार में प्रवृत्त करता-करता दोषों की मात्रा को बढ़ाते हुए दोष के चरम स्तर में पहुँच जाता है जिस स्तर को (4) अनाचार कहते हैं। इस अवस्था में विषयों में अत्यंत आसक्ति होती है। इस विभिन्न स्तरों को समझने के लिए धूम्रपान, मद्यपान, नशीली वस्तुओं के सेवन करने वालों के विभिन्न स्तरों की प्रकृति-प्रवृत्ति उदाहरण के योग्य है।

सर्वोदय होना दुर्लभतम

(चाल : रवीन्द्र संगीत....., आत्मशक्ति.....)

अनुभव मुझे हो रहा है सर्वोदय (होना) दुर्लभतम है।
कोई बुद्धिमान है तो नहीं श्रद्धावान्, (कोई) श्रद्धावान् है तो नहीं प्रज्ञावान्।
श्रद्धा-प्रज्ञा होना दुर्लभतर है।। (1)

श्रद्धा-प्रज्ञा-सदाचार दुर्लभतम है।
आत्मश्रद्धान सहित प्रज्ञा व चारित्र दुर्लभतम है।
अंधश्रद्धा-कुबुद्धि-(से) चर्चा सुलभतम है।। (2)

मैं हूँ आत्मजीव द्रव्य सच्चिदानंद हूँ।
राग-द्वेष-मोह शून्य मैं हूँ, तन-मन से भी रहित हूँ।
ऐसी श्रद्धा-प्रज्ञा-चर्या दुर्लभतम है।। (3)

धार्मिक अंधश्रद्धा या स्वार्थसिद्धि (हेतु) के कारण।
होता जो विश्वास वह तो सुलभतम है।
इस हेतु बुद्धि व चर्या होती सहजतम है।। (4)

तन-मन-आत्मा स्वस्थ्य होना दुर्लभतम है।
तीनों से आत्म साधना नहीं सुलभतम है।
शक्ति से शांति साधना दुर्लभतम है।। (5)

समता-शांति-समन्वय नहीं सुलभ।
सदुपयोग से दुरुपयोग होता है सुलभ।
अहंकार-ममकार सबसे है सुलभ।। (6)

इससे परे सभी ही दुर्लभ है।
आत्मा की उपलब्धि सबसे दुर्लभ है।
इस हेतु ही 'कनक' करे प्रयत्न है।। (7)

चितरी, दिनांक 21.10.2017, प्रातः
(यह कविता दीपेश व मणिभद्र के कारण बनी।)

सही आस्था (श्रद्धा, विश्वास) अमृत तो गलत आस्था मृत (विष)

(चाल : गंगा तेरी धारा अमृत.....)

आस्था तेरी अनंतधारा, जीवों में बहती जाए।
सही आस्था व गलत आस्था, तेरे (प्रमुख) दो भेद होए।। आस्था...(ध्रुव)

सही आस्था तो सत्य विश्वासमय...जो आत्मविश्वास युक्त...
समता-शांति-आत्मविशुद्धि...उदार सहिष्णु युक्त...
स्व-पर-विश्व कल्याण युक्त...क्षमा सरलता युक्त...(1)...

इससे ही ज्ञान सुज्ञान होता...आचरण भी पावन होए...
अहिंसा-सत्य-अचौर्य-ब्रह्मचर्य...अपरिग्रह युक्त होए...

मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ...संयम-तप-त्यागमय...(2)...

इससे ही मानव महामानव होते...स्व-पर में सुख होए...
वात्सल्य-सहयोग-सेवा बढ़े...विश्व मैत्री शांति होए...
अन्याय-अत्याचार-भ्रष्टाचार नशे...युद्ध-आतंक नाश होए...(3)...

इससे सभ्यता-संस्कृति जन्मे...कला-साहित्य भी जन्मे...
भौतिक-नैतिक-आध्यात्मिक विकसे...गणित से ले आयुर्वेद फैले...
व्यक्ति-समाज व विश्वस्तर में...शांति समृद्धि विस्तरे...(4)...

इससे विपरीत तेरी दशा में...आस्था अंध श्रद्धा होए...
क्रूरता-कठोरता-संकीर्णता जन्मे...विवेक (सुज्ञान) नष्ट हो जाए...
ईर्ष्या-घृणा-वैर-विरोध जन्मे...भेदभाव उत्पन्न होए...(5)...

स्व-अंधश्रद्धा से जो होते भिन्न...उन्हें अधर्मी-कुधर्मी माने...
उनसे पूर्वोक्त क्रूरतादि करे...ईर्ष्या-घृणादि से प्रेरित होए...
भेदभाव व शोषण-युद्ध से...उन्हें नाशकर धार्मिक माने...(6)...

ऐसी तेरी अंधश्रद्धा से...धरती (पृथ्वी) रक्तरंजित होए...
सभ्यता-संस्कृति-कला-साहित्य...ज्ञान-विज्ञान नष्ट होए...
मानव दानव बन कुकार्य करे...धरती को नरक बनाए...(7)...

सुआस्था तेरी अमृत धारा...कुआस्था है विषधारा...
पीना है तो मानव अमृत पीओ...नहीं तो विष को न पीओ...
भोगभूमिज भद्र परिणामी सम...धर्म रहित भी शांत बनो...(8)...

ऐसे मानव भी स्वर्ग जाते...स्वर्ग से बनते मानव...
किन्तु अंधश्रद्धानी क्रूर मानव...इह-पर भव में बने नारकी...
ऐसी श्रद्धा तेरी विचित्र रूप...'कनक' सेवे अमृत रूप...(9)...

चितरी, दिनांक 11.10.2017, रात्रि 8.17

(पृथ्वीभर के प्रायः हर धार्मिक पंथ-मत-परंपरा विचारधारा (राजनैतिक, दार्शनिक, आर्थिक, राष्ट्रीय) आदि कुकार्य से दुःखी होकर यह कविता बनी।)

उजाले की ओर

पूरी जिंदगी मेरे मूल्य खास अमेरिकी मध्यवर्गीय मूल्य रहे कड़ी मेहनत, अच्छे कर्म, अच्छा जीवनस्तर, कायदे-कानून का पालन और यथासंभव श्रेष्ठ होकर दिखाना... लेकिन ईश्वर स्पष्ट कहता है, 'ये मेरे मूल्य नहीं है। मैं तो न्याय, करुणा और विनम्रता की कद्र करता हूँ।' -जॉन ग्रीन, लेखक

जिंदगी का मूल्य इससे भी आँका जा सकता है कि कितनी बार आपकी आत्मा बहुत गहराई तक हिल गई थी। -सोईचिरो होंडा, जापानी उद्योगपति

मूल्य जिंदगी में हमारे क्रियाकलापों की परिभाषा है।-आर्मिन हॉर्मेन, उपदेशक

जब हम चमत्कारों पर जरूरत से ज्यादा जोर देने लगते हैं तो मूल्यों को ज्यादा महत्व नहीं देते। -संडे अडेलाजा, यूक्रेन के मोटिवेटर

आदमी की कीमत इससे नहीं समझी जानी चाहिए कि वह क्या देता है बल्कि इससे आँकी जानी चाहिए कि वह प्राप्त क्या करता है? -अल्बर्ट आइंस्टीन

यह जानना कि आप किस चीज की कद्र करते हैं और कितनी करते हैं, ऐसी आग है, जो अंधेरे को दूर कर उजाला ला देती है। दुनिया में बहुत सी रोशनियाँ हैं। मेडिटेशन आपको अपनी निगाह उस रोशनी पर दृढ़ता से टिकाये रखने में मदद करता है, जिसकी आप कद्र करते हैं। -बिल एडम्स, मोटिवेशनल स्पीकर

यदि आप वाकई जिंदगी का मूल्य समझते हैं तो आप समाज के सारे सबसे कमजोर और असुरक्षित लोगों की परवाह करेंगे। -जोनी टैंडा, अध्यात्मवादी

हम हमारे पलों का सच्चा मूल्य तब तक नहीं जानते जब तक कि वे याददाश्त की कसौटी पर नहीं कसे जाते। -डुहामेल, फ्रेंच पेंटर

जो आदमी खुद की कद्र नहीं करता, वह किसी और चीज या व्यक्ति की भी कद्र नहीं करेगा। -आयन रैंड, लेखिका

आप जीवन में क्या स्वीकार करेंगे इसका आधारभूत मानक नहीं बनायेंगे तो आप आसानी से ऐसे निम्न स्तरीय जीवन में फिसल सकते हैं, जिसके आप हकदार नहीं है। -टोनी रॉबिन्स, फाइनेंशियल एडवाइजर

संदर्भ-

समस्त सुखों का आधार धर्म

धर्मः सर्व सुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्निन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिव सुखं धर्माय तस्मै नमः।।
धर्मान्नास्त्यपरः सहृदभवभृतां धर्मस्य मूलं दया।
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म! मां पालय।।

धर्म समस्त प्रकार के सुखों को एवं हितों को करने वाला है, धर्म से ही शाश्वतिक सुख प्राप्त होता है। धर्म को छोड़कर दुःखी संसारी जीवों का कोई भी बंधु-बांधव नहीं है। इसलिये हे सुख इच्छुक ज्ञानी जीव! धर्म का संचय करो। धर्म का मूल विश्व प्रेम है। मैं धर्म में अपने चित्त का समर्पण करता हूँ। हे सर्व सुख दातार! धर्म मेरा पालन करो।

धारणाद्धर्ममित्याहु धर्मो धारयते प्रजाः।
यः स्याद्धारण संयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।

जो धारणा करता है उसे धर्म कहते हैं। धर्म संपूर्ण जीव-जगत् का धारण, पोषण, रक्षण करता है। जिसमें धारण करने की शक्ति, सामर्थ्य और क्षमता हो उसे निश्चयपूर्वक धर्म जानो।

यस्मादभ्युदयः पुंसां निःश्रेयस फलाश्रयः।
वदन्ति विदिताम्ना यास्तं धर्मं धर्मसूरयः।। (धर्म रत्नाकर)
''यस्मादभ्युदयः निःश्रेयस सुखं सः धर्म।।'' (हिन्दू धर्म)

जिससे शारीरिक, सांसारिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, इन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती, तीर्थङ्कर, मनुष्य, पशु आदियों के सुख प्राप्त होता है उसको अभ्युदय सुख कहते हैं। आध्यात्मिक, अतीन्द्रिय, अभौतिक, शाश्वतिक, निराबाध, अविषय जनित, स्वातंत्र्य मोक्ष सुख को निश्रेयस सुख कहते हैं। धर्म से उपरोक्त निश्रेयस एवं अभ्युदय सुख प्राप्त होता है।

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम्।
संसारदुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे।। (2) रत्नकरण्ड

महान् दार्शनिक, तत्त्ववेत्ता, तार्किक चूड़ामणि समंतभद्र स्वामी प्रतिज्ञा करते हैं

कि मैं उस समीचीन धर्म को कहूँगा जो धर्म दुःखों से संतप्त जीवों के कर्म को विध्वंस करके, समस्त दुःखों से उद्धार करके जीवों को शाश्वतिक अति उत्तम सुख में धारण कराता है। अर्थात् दुःखों से पार करने वाले एवं उत्तम सुख में धारण करने वाले को धर्म कहते हैं।

धर्मो गुरुश्च मित्रं च धर्मः स्वामी च बान्धवः।
अनाथ वत्सलः सोऽयं स त्राता कारणं बिना।।

धर्म ही गुरु, मित्र, स्वामी, बांधव है तथा अनाथों का रक्षण करने वाला है। धर्म निःस्वार्थ भाव से स्वेच्छापूर्वक अकारण रक्षक के समान सबकी रक्षा करता है।

पवित्री क्रियते येन येनैव घ्रियते जगत्।
नमस्तस्मै दयाद्राय धर्मकल्पाङ्घ्रिपाय वै।।

जो संपूर्ण विश्व को पवित्र करता है एवं धारण करता है, उस विश्व प्रेम से आर्द्र (ओतप्रोत) धर्मरूपी कल्पवृक्ष के पवित्र चरण कमल में मेरा शतशः अभिवंदन हो।

धर्म से किस प्रकार समस्त प्रकार का सुख मिलता है। इसी पुस्तक में आगे संदर्भ के अनुसार अनेक स्थलों में दिग्दर्शन किया जायेगा।

धर्मादि के अन्यथा प्रयोग से दुःख

मूढः स्वार्थी च मानी च, मोही जानाति न त्रयम्।
अन्यथा ते प्रयुञ्जन्ति, तस्माद्त्रिदुःख कारणम्।। (17) कनकनंदी

मूढ़, स्वार्थांध, अहंकारी, मोही जीव धर्म दर्शन विज्ञान को यथार्थ रूप से नहीं जानता है, उनका दुष्प्रयोग करता है जिससे तीनों दुःखदायी बन जाते हैं।

मिथ्या धर्म से हानि

तर्क दर्शनं विज्ञान हींन राजा यथा परिषदः विहीनम्।
ते धर्म न हि मिथ्या कुवाद सर्वमनर्थवृक्षस्य बीजम्।। (10)

तर्क दर्शन विज्ञान से रहित धर्म नहीं है परन्तु मिथ्या रूढ़िवाद है, जैसे राजा हितोपदेशी मंत्री आदि परिषद् से रहित होने पर देश के अहित के लिए होता है उसी प्रकार मिथ्या धर्म समस्त अनर्थ के लिए बीज स्वरूप है।

राजा यथार्थ से एक जन नायक, प्रजा पालक, नीति नियम का संरक्षक एवं

प्रजा का रक्षक होता है। परन्तु जब राजा स्वार्थांध होकर मंत्री, पुरोहित, गुरुजन, पारिषदादिकों के हितोपदेश, सलाह, मंत्रणादि नहीं सुनकर स्वार्थ सिद्धि के लिए प्रवृत्त होता है तब वह रक्षक न होकर भक्षक बन जाता है। इसी प्रकार जब धर्म, नीति, नियम, सदाचार, विनय, तर्क, दर्शन, विज्ञान से रहित हो जाता है तब वह धर्म जीवों के विकास के लिए कारण नहीं बनता है परन्तु विनाश के लिए समर्थ कारण बन जाता है।

यदि हम निरपेक्ष दृष्टि से विश्व इतिहास का सूक्ष्म अध्ययन करेंगे तब हमको इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ पुकार-पुकार कर कहेगा कि ''विश्व में अभी तक जो रक्तपात, युद्ध, विषाद, कलह, वैमनस्य, द्वेष पक्षपातादि हुआ है उसका बहुत कुछ श्रेय मिथ्याधर्म को हैं।'' धर्म के नाम पर यज्ञ में निरपराधी पशुओं की बलि, शोषण मिथ्यादंभ (अहम्), मिथ्यारूढ़ि, सती दाह प्रथा, यहाँ तक कि यज्ञ में राजाओं की आहूति ये सब अवदान मिथ्या धर्म का है। मनुष्य समाज में विभिन्न संप्रदाय के कारण जो संकीर्ण मनोभाव, गुटबंदी, भेदभाव व घृणा भाव है उसका मूल कारण कुधर्म (पाखण्ड धर्म) कहने पर कोई अतिशयोक्ति न होगी। इसलिए मनुष्य के नम्र पुजारी साम्यवाद के पुरस्कर्ता लेनिन कहते हैं कि-

Religion to his master, Marx had been the "opium of the people" and to Lenin it was "a kind of spiritual cocaine in which the salves of capital drawn their human perception and their demands for any life worthy of a human being."

Fulop Miller, Mind and face of Bolshevism. P. 78.

धर्म की ओट में हुए अत्याचारों से व्यथित ही कहता है कि विश्व कल्याण के लिए धर्म की कोई आवश्यकता नहीं है। उसके प्रभाव में आये हुए व्यक्ति धर्म को उस अफीम की गोली के समान मानते हैं जिसे खाकर कोई अफीमची क्षण भर के लिए अपने में स्फूर्ति और शक्ति का अनुभव करता है। इसी प्रकार उनकी दृष्टि में धर्म भी कृत्रिम आनंद अथवा विशिष्ट शांति प्रदान करता है।

उपरोक्त लेनिन के ही विचार को बहुत शताब्दी के पहले जैनाचार्य रविषेण जैन रामायण (पद्म पुराण) में पाखंडियों को स्पष्ट रूप से ललकारते हुए कहते हैं कि-

धर्मः शब्द मात्रेण बहुशः प्राणिनोऽधर्माः।

अधर्ममेव सेवन्ते विचार जड़ चेतसाः।।

अधिकांशतः विचारहीन अधर्म प्राणी धर्म शब्द को लेकर अधर्म ही सेवन करते हैं।

एक शांति प्रिय अहिंसावादी निस्पृह साधु श्री दिगम्बर जैनाचार्य रविषेण पाखंडियों की पाखंड क्रियाओं से जो संपूर्ण जीव-जगत् का अकल्याण, अनर्थ (अवनति) होता है उसको स्पष्ट रूप से अनुभव करके उसके प्रतिकार के लिए निर्भीक वीर सिंह के समान ललकार करके भर्त्सना करते हैं, क्योंकि मिथ्याधर्म से प्राणी जगत् की जो क्षति और अवनति होती है वह क्षति अपूर्णनीय है। इसी प्रकार क्षति नहीं पहुँचे अतः पहले से प्राज्ञ व्यक्तियों को सतर्क रहना चाहिए। इस प्रकार आदि शंकराचार्य कहते हैं कि-

जटिलो मुण्डी लुंचित केशः कषायाम्बरः बहुकृतवेषः।
पश्यन्नपि न च पश्यति मूढ़ः उदर निमित्तं बहुकृत वेषः।। (24)

जटा बढ़ाने वाले, सिर मुण्डन करने वाले, कषायाम्बरादि अनेक धार्मिक वेषों को धारण करने वाले मूढ़ लोक जो कि आत्म-धर्म से रहित होने के कारण आत्मा के सत्य धर्म को नहीं देखते हैं वे मूर्ख केवल उदर (पेट) पोषण के लिए अनेक प्रकार बाह्य वेष को धारण करते हैं। वे केवल स्वार्थ सिद्धि के लिए, यश प्रतिष्ठा मान-सम्मान के लिए, अर्थ शोषण के लिए बाह्य वेष बनाकर धर्मोपदेश करते हैं परन्तु अंतरंग में बगुला भक्त होते हैं। जैसे कि बक पक्षी बाह्य में शुक्ल होता है एवं जलाशय में एक पैर पर खड़ा रहकर ध्यानी के समान ध्यान करता है परन्तु जब जलाशय के ऊपर मत्स्य आती है तब मछली को ओम स्वाहाः करता है। इसी प्रकार कुछ पाखंडी साधु बाह्य से धार्मिक वेशभूषा धारण करते है और भोले प्राणियों को अपने चंगुल में फँसाने के लिए अनेक धार्मिक मायाजाल फैलाते हैं और संयोग मिलने पर वक पक्षी के समान प्राणियों के धन, जन, जीवन तक अपहरण कर लेते हैं। किसी नीतिकार ने कहा भी है-

परोपदेशे पांडित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।
धर्मे स्वयमनुष्ठानं कस्याचित् महात्मनः।।

दूसरों को सदाचार का, धर्म का उपदेश देना सुलभ है किन्तु उसी उपदेशानुसार

स्वयं आचरण करने वाले जगत् में बिरले ही कोई सज्जन है।

स्वार्थ सिद्धि के लिए धर्म के नाम पर जो अन्याय अत्याचार, हिंसा आदि करते हैं उनको वक्र (व्यंग्य) दृष्टि से परोक्ष से भर्त्सना करते हुए वैदिक ऋषि कहते हैं कि-

यूपं छित्वा पशुना हत्वा, कृत्वा रूधिर कर्दमम्।
यद्येवं गम्मते स्वर्गं, नरकं केन गम्यते।।

यज्ञ काष्ट को छेदकर, पशुओं की निर्मम भाव से हत्या कर जो भूमि को रक्त से कीचड़ करके स्वर्ग जायेगा तो और किस कर्म से नरक जायेगा? अर्थात् नरक स्थान का सर्वोत्तम मार्ग उपरोक्त कर्म ही है। उपरोक्त कर्म करके कोई भी स्वर्ग नहीं जा सकता।

व्याकरण से लेकर आध्यात्म संबंधी शोधपूर्ण कविता

त्रिविध त्याग से त्रिविध पाऊँ

-आचार्य कनकनंदी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)

सत्य-समता व मैं शांति चाहूँ...मिथ्या-विषमता व मैं अशांति त्यागूँ...
संकल्प-विकल्प व संक्लेश त्यागूँ...निर्विकार-निर्विकल्प-निश्चिन्त चाहूँ...

आकर्षण-विकर्षण-विभाव त्यागूँ...निश्चल-निश्छल व स्वभाव चाहूँ...
अपेक्षा-उपेक्षा व प्रतीक्षा त्यागूँ...निरपेक्ष-निर्लिप्त-स्वतंत्र चाहूँ...

अहंकार-ममकार-विकार त्यागूँ...अहंभावी-साम्यभावी-शुद्धता चाहूँ...
ख्याति-पूजा-लाभ को मैं त्याग करूँ...आत्म प्राप्ति-सिद्धि व नवलब्धि चाहूँ...

अंधश्रद्धा-अविवेक-कुआचार त्यागूँ...आत्मश्रद्धा-सुज्ञान-सदाचार चाहूँ...
परनिंदा-अपमान-अहित त्यागूँ...दोषवादे मौन-समादर-हित चाहूँ...

हठाग्रह-दुराग्रह-कुतर्क त्यागूँ...सत्याग्रह-सदाशय-समीक्षा चाहूँ...
द्रव्य भाव-नोकर्म से परे चाहूँ...स्वद्रव्य-भाव गुण 'कनक' चाहूँ...

चितरी, दिनांक 21.10.2017, रात्रि 9.41

व्याकरण से लेकर अनेकांत सिद्धांत संबंधी शोधपूर्ण कविता-

विरोध सापेक्ष अविरोध

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)

दुर्लभ है अलभ्य नहीं आत्मोपलब्धि।
दुरूह है अगम्य नहीं मोक्ष की प्राप्ति।
अपूर्व है मोक्ष प्राप्ति संसारी जीवों के लिए।
भावी में मोक्ष संभव भव्य जीवों के लिए।
अज्ञेय है मोही के लिए परमात्मा स्वरूप।
(सुज्ञेय है मोही के अज्ञान भी परमात्मा के लिए।)
अज्ञेय नहीं है कुछ भी परमात्मा के लिए।
सकारण होते हैं सभी व्यवहारनय के सत्य।
अकारण होते हैं सभी शुद्ध परम सत्य।
असंभव है परम सत्य का असत्य होना।
संभव है संभाव्य का सत्य घटित होना।
अदृश्य है अमूर्तिक द्रव्य छद्मस्थ हेतु।
दृश्यमान है अमूर्तिक द्रव्य भी सर्वज्ञ हेतु।
अभूतपूर्व है मोही के लिए आत्म-श्रद्धान।
भूतपूर्व (है) भी मुक्त के लिए आत्म-श्रद्धान। प्रथमोपशम सम्यक्त्व की अपेक्षा
निकम्मा होते है केवल शुद्ध परमात्मा।
निकम्मा न होते है कोई अशुद्ध आत्मा।
अहंभावी होते है जो शुद्धात्मा लीन।
अहंकारी होते है जो मोह से आच्छन्न।
स्वाभिमानी होते है जो शुद्धात्मा के ज्ञाता।
अभिमानी होते है जो मोही मूढ़ात्मा।
दिशा नामकरण होता है सापेक्ष।
दिशा नामकरण न होता है निरपेक्ष।
अनेकांत भी होता है अनेकांत।

निरपेक्ष न अनेकांत सापेक्ष है अनेकांत।
स्याद्वाद के भङ्ग भी होते हैं सप्त/(अनंत) भेद।
निर्विकल्प स्व-सम्वेदन होता है भेद रिक्त।
परम शुद्ध सत्य-द्रव्य होते है निरपेक्ष।
अनंत परम रहस्य छद्मस्थ न ज्ञानगम्य।
अनंत परम रहस्य सर्वज्ञ ज्ञानगम्य।
परम सत्य/(द्रव्य) भी नास्ति पर-स्वरूप अभावतः।
सर्वथा नास्ति स्वरूप संभव नहीं कदाचित्।
ज्ञान बिना न ज्ञेय, ज्ञेय बिना न ज्ञान।
सभी ही ज्ञानगम्य सो होते हैं सर्वज्ञ।
सर्वथा न सर्वथा सत्य जो होता निरपेक्ष।
सापेक्ष-निरपेक्ष का 'कनक' रचा है काव्य।

चितरी, दिनांक 21.10.2017, रात्रि 7.35

(विशेष परिज्ञान हेतु कविकृत 'अनेकांत सिद्धांत' ग्रंथ का अध्ययन करें।)

गुण प्रशंसा व स्व-दोष स्वीकार से विकास तो गुण निंदा व स्व-दोष छिपाने से विनाश

(चाल : आत्मशक्ति.....)

गुण प्रशंसा से गुण वृद्धि होते, स्व-दोष स्वीकार से दोष हानि।
गुण निंदा से गुण नाश होते, स्व-दोष छिपाने से दोष वृद्धि।।

पूजा-प्रार्थना-आरती-वंदना आदि होती है गुण प्रशंसा।
'वंदे तद् गुण लब्धये प्राप्तये' हेतु की जाती है गुण प्रशंसा।। (1)

गुण प्रशंसा से होता प्रमोद भाव 'गुणेषु प्रमोद' सूत्र कहता।
प्रमोद भाव में होती है ईर्ष्या-द्वेष-घृणादि की क्षीणता।।

इससे आत्मिक गुण प्रगट होते जिससे होता पाप क्षय।
शुभ भाव से पुण्य बंध होता जिससे होता है सर्वोदय।। (2)

इससे विपरीत है गुण निंदा जिसमें होते ईर्ष्या-द्वेष-घृणा।
जिससे होता है आत्म मलीन जिससे होता पाप कर्मबंध।।

इससे इह परलोक में मिलते, अनेक दुःख कलह-विसंवाद आदि।
आक्षेप-निंदा-दुर्गुण ग्रहण से लेकर आक्रमण-युद्धादि।। (3)

स्व-दोष स्वीकार है महान् गुण, जिसमें होता हिताहित-विवेक।
आत्म विश्लेषण से ले प्रायश्चित्त ग्रहण व आत्मिक शुद्धिकरण।।

इससे दोष दूर होते जिससे, उत्पन्न होता है शुभ भाव।
पापकर्म होते नष्ट व पुण्य बंध से लेकर स्वर्ग-मोक्ष तक।। (4)

स्व-दोष छिपाने से होते है पूर्वोक्त से विपरीत काम।
मायाचार से ले मिथ्याचार, अहंकार से ले ममकार।।

इससे दोष बढ़ते जाते, जिससे होता अधिक पाप बंध।
जिससे होता आत्म पतन, संसार में होता परिभ्रमण।। (5)

गुण प्रशंसा व स्व-दोष स्वीकार में/(से) होता है शुभ भाव।
गुण निंदा व स्व-दोष छिपाने में/(से) होता है अशुभ भाव।।

शुभ भाव ग्रहण व अशुभ भाव त्याग बिन नहीं होता है धर्म आरंभ।
हर क्षेत्र में इन गुणों के बिना, संभव नहीं है विकास आरंभ।। (6)

व्यक्ति से लेकर समाज राष्ट्र के, विकास हेतु उक्त गुण चाहिए।
इस हेतु ही 'कनकनंदी', उक्त गुणों को अनिवार्य मानते।। (7)

चितरी, दिनांक 22.10.2017, रात्रि 10.50

(यह कविता ब्र. रोहित व सौ. वर्षा के कारण बनी)

सेहत भी संवारते हैं दोस्त

यूनिवर्सिटी ऑफ नॉर्थ कैरोलीना की समाजशास्त्री यांग क्लेअप कहती हैं कि स्वस्थ रहने के लिए हमारा सामाजिक जीवन किसी भी दूसरी चीज से ज्यादा महत्व रखता है, डाइट और एक्सरसाइज से भी ज्यादा। दुनिया भर में कई शोधकर्त्ताओं ने सेहत पर दोस्ती के प्रभावों को लेकर तरह-तरह के शोध किये हैं-

दीर्घायु बनाते हैं दोस्त-समाजशास्त्रियों और व्यवहार विशेषज्ञों ने पाया हैं कि जिन लोगों को मजबूत सामाजिक संबंध बनाये रखने की आदत है उनकी अलग-थलग रहने वाले लोगों की तुलना में, असमय मृत्यु होने की संभावना कम होती है। आयु पर सामाजिक संबंधों का असर एक्सरसाइज से दोगुना और सिगरेट छोड़ने के असर के बराबर प्रभाव पड़ता है। इन अध्ययनों में 300000 लोगों के सामाजिक संबंधों व सेहत से जुड़े आँकड़ों पर पड़ताल की गई थी। समाजशास्त्री यांग का मानना है कि लोगों के साथ मेलजोल रखने वाले स्ट्रेस के शिकार कम होते हैं। स्ट्रेस सेहत का सबसे बड़ा शत्रु है।

हैल्दी रखते हैं दोस्त-यांग और उनकी सहयोगी समाजशास्त्रियों ने चार बड़े तुलनात्मक अध्ययन किये। इनमें 12 से 91 वर्ष तक के हजारों लोग शामिल थे। शोधकर्त्ताओं ने ब्लड प्रेशर, बॉडीमास इंडेक्स, कमर का घेरा और इंफ्लेमेशन मार्कर सी रिएक्टिव प्रोटीन का स्तर इन चार बायोमार्कर्स की तुलना दोस्तों के बीच रहने वाले और अलग-थलग रहने वाले लोगों के बीच की, तो पाया कि एकाकी स्वभाव वालों की हैल्थ रिपोर्ट दोस्तों के बीच रहने वालों की बनिस्पत काफी कमजोर थी।

दिमाग दुरुस्त रखते हैं दोस्त-2012 में किये गये एक वैज्ञानिक अध्ययन में पाया गया था कि अकेलेपन के अहसास के बीच जीने वाले लोगों में वृद्धावस्था में जाकर डिमेंशिया जैसी मानसिक बीमारी का खतरा बढ़ जाता है। इस अध्ययन में नीदरलैंड्स के 65 और उससे अधिक आयु के 2000 से अधिक लोगों की आदतों व सेहत पर तीन वर्षों तक नजर रखी गई थी। शुरू में इनमें से किसी को डिमेंशिया की समस्या नहीं थी, लेकिन बाद में जो अकेलापन महसूस करते थे उनमें से 13.4 फीसदी लोगों में इस बीमारी के लक्षण देखे गये। जबकि दूसरे समूह के सिर्फ 5.7 फीसदी लोगों में यह समस्या देखी गई। 'जर्नल ऑफ न्यूरोलॉजी, न्यूरोसर्जरी एंड साइकिएट्री' में अपनी रिपोर्ट में इन शोधकर्त्ताओं ने लिखा, 'अकेले होने की बजाय खुद को अकेला समझना डिमेंशिया के लिए ज्यादा जिम्मेदार रहा।'

148 अध्ययनों की समीक्षा के बाद शोधकर्त्ता इस नतीजे पर पहुँचे कि आयु पर सामाजिक संबंधों का असर एक्सरसाइज की तुलना में दोगुना पड़ता है।

मानसिक ताकत देते हैं दोस्त-कैंसर मरीजों पर किये गये एक महत्वपूर्ण अध्ययन की विस्तृत रिपोर्ट, जो 'दी लांसेट' जर्नल में प्रकाशित हुई थी, में कहा गया कि इन्हें दोस्तों से जीने की चाहत और बीमारी से लड़ने की मानसिक ताकत मिलती है। अध्ययन में शोधकर्त्ताओं ने पाया कि ब्रेस्ट कैंसर से पीड़ित जो महिलाएँ अपने सपोर्ट ग्रुप के साथ रही, उन्होंने आगे चलकर जिंदगी को सुगम पाया और अकेले रहने वाली महिलाओं की तुलना में उनकी आयु भी अधिक रही। 2014 में प्रोस्टेट कैंसर से पीड़ित पुरुषों पर किये एक शोध में भी ऐसे ही नतीजे पाये गये।

रिजेक्शन शॉक से उबारते हैं दोस्त-कई बार जब हम अपने करियर, प्रोफेशन या लव लाइफ में रिजेक्शन का शिकार हो जाते हैं तो हमारा आत्मविश्वास डोल जाता है और हम एंग्जायटी व स्ट्रेस का शिकार हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में कई बार व्यक्ति आत्महत्या तक का मन बना सकता है। एक अध्ययन में पाया गया कि इस परिस्थिति में सबसे ज्यादा मददगार दोस्त होते हैं। रैडबोड यूनिवर्सिटी निजमेगेन (नीदरलैंड्स) में साइकोलॉजी के प्रोफेसर मैरीएन रिकसेन वालरेवन कहते हैं, 'माना कि दोस्त ऐसे स्ट्रेस को पूरी तरह खत्म नहीं कर सकते, लेकिन वे इसे काफी हद तक कम करके जिंदगी को आसान बना सकते हैं और अपने दोस्त को रिजेक्शन शॉक से उबारते है।'

संदर्भ-

नीच गोत्र का आस्रव

परात्मनिन्दाप्रशंसे सद सद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य। (25)

The inflow of नीचे गोत्र low-family-determining karma is caused by :

(1) परनिन्दा Seaking ill of others.

(2) आत्मप्रशंसा Praising oneself.

(3) सद्गुणोच्छादन Concealing the good qualities of others; and

(4) असद्गुणोद्भावन Proclaiming in oneself the good qualities

which one does not possess.

परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, सद्गुणों का उच्छादन, असद्गुणों का उद्भावन ये नीच गोत्र के आस्रव हैं।

सच्चे या झूठे दोष को प्रकट करने की इच्छा निन्दा है। गुणों के प्रकट करने का भाव प्रशंसा है। पर और आत्मा शब्द के साथ इनका क्रम से सम्बन्ध होता है। यथा परनिन्दा और आत्मप्रशंसा। रोकने वाले कारणों के रहने पर प्रकट नहीं करने की वृत्ति होना उच्छादन है और रोकने वाले कारणों का अभाव होने पर प्रकट करने की वृत्ति होना उद्भावन है। यहाँ भी क्रम से सम्बन्ध होता है। यथा-सद्गुणोच्छादन और असद्गुणोद्भावना इन सब को नीच गोत्र के आस्रव के कारण जानना चाहिए।

उच्च गोत्र कर्म का आस्रव

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य। (26)

The inflow of the next, i.e. उच्चगोत्र hight-family-determining karma is caused by the opposite of the above, i.e. by :

(1) पर प्रशंसा-Prasing others;

(2) आत्मनिन्दा-Denouncing one's self;

(3) सद्गुणोद्छादन-Proclaiming the good-qualities of others;

(4) असद्गुणोद्भावन-Not proclaiming one's own;

(5) नीचैर्वृत्ति-An attitude of humility towards one's better;

(6) अनुत्सेक-Not being proud of one's own achievements or attainments.

उनका विपर्यय अर्थात् पर प्रशंसा, आत्मनिन्दा, सद्गुणों का उद्भावन और असद्गुणों का उच्छादन तथा नम्रवृत्ति और अनुत्सेक ये उच्च गोत्र के आस्रव हैं।

जो गुणों में उत्कृष्ट हैं उनके प्रति विनय से नम्र रहना नीचैर्वृत्ति है। ज्ञानादि की अपेक्षा श्रेष्ठ होते हुए भी उसका मद न करना अर्थात् अहंकार रहित होना अनुत्सेक है। ये उत्तर अर्थात् उच्च गोत्र के आस्रव के कारण हैं।

तीर्थेश गुरु साङ् घानामुच्चैः पदमयात्मनाम्।
प्रत्यहं व नुतिं भक्तिं तन्वन्ति गुण कीर्तनम्।। (196)
स्वस्य निन्दां च येऽत्रार्या गुणिदोषोपगूहनम्।
तेऽपुत्र त्रिजगद्वन्द्यं गोत्रंश्रयन्ति गोत्रतः।। (197)

जो आर्यजन तीर्थंकर, सुगुरु, जिनसंघ और उच्चपदमयी पंच परमेष्ठियों की प्रतिदिन पूजा-भक्ति करते हैं, उनके गुणों का कीर्तन करते हैं उन्हें नमस्कार करते हैं, अपने दोषों की निन्दा करते हैं और दूसरे गुणीजनों के दोषों का उपगूहन करने हैं, वे पुरुष उच्च गोत्र कर्म के परिपाक से परभव में त्रिजगद्-वंद्य उच्च गोत्र कर्म का आश्रय प्राप्त करते हैं अर्थात् तीर्थंकर होते हैं।

प्यार इंसान को अंदर से बनाता है मजबूत

जब इंसान दुनिया की हर चीज से प्यार करने लगता है तो उसकी सेहत में भी सकारात्मक बदलाव आने लगता है। विज्ञान कहता है कि जब आप खुश होते हैं तो डोपामिन, नॉर-एपिनेफ्रिन और फिनाइल इथाइल एमिन नामक हार्मोन्स खून में शामिल होते हैं। डोपामिन हार्मोन ऑक्सीटोसीन के स्राव को भी उत्तेजित करता है जो इंसान में आत्मविश्वास बढ़ाता है। नॉर-एपिनेफ्रिन आपके मन को उल्लास से भर देता है।

मूड़ अच्छा, बीमारियाँ दूर-अगर आप किसी के प्यार में होते हैं तो शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी अच्छी बनी रहती है, क्योंकि जब आप किसी के साथ रिलेशनशिप में होते हैं तो आपका शरीर फील गुड हार्मोन्स पैदा करता है। इसके कारण आपका मूड़ अच्छा रहता है और आप बीमारियों से दूर रहते हैं। इस स्थिति में आप ज्यादा कूल और पॉजिटिव होते हैं। इससे आपको तनाव कम होता है और आप डिप्रेशन से दूर रहते हैं।

दर्द से लड़ने की हिम्मत-जब आप किसी के सच्चे प्यार या अच्छी रिलेशनशिप में होते हैं तो आपके अंदर विश्वास की भावना तेजी से बढ़ती है। इससे फीलिंग्स को शेयर करने की भावना आती है। इसलिये बेहतर रिलेशनशिप आपको दर्द से लड़ने की हिम्मत देती है। जब आप रिलेशनशिप से खुश होते हैं तो आपकी

परफॉर्मेंस भी अच्छी होती है और आप क्रिएटिविटी भी दिखा पाते हैं। इसी तरह मजबूत संबंध में लड़ाई नहीं होती, क्योंकि आप समस्याओं का हल लड़कर नहीं, बल्कि बातचीत करके निकालते हैं। किसी का सपोर्ट मुश्किलों से लड़ने की ताकत देता है।

हिन्दी भाषा शुद्ध-श्रेष्ठ...क्यों नहीं हो पा रही है!?

(चाल : आत्मशक्ति.....)

हिन्दी भाषा बोलने वालों की संख्या है तो अति प्रचुर।
किन्तु हिन्दी भाषा अभी तक नहीं बन पाई है श्रेष्ठतर।।

इसके अनेक कारणों का वर्णन किया हूँ मैं अन्यत्र।
यहाँ पर कुछ कारणों का वर्णन कर रहा हूँ संक्षेप।। (1)

तत्सम शब्दों का प्रायः नहीं होता है प्रयोग हिन्दी में।
तद्भव शब्द भी कम प्रयोग होता अभी प्रचलित हिन्दी में।।

देशी-विदेशी शब्दों का प्रचलन होता अधिक हिन्दी में।
बाजारू व सिनेमा के शब्द अधिक प्रचलन है हिन्दी में।। (2)

संधि-समासांत शब्दों का प्रचलन कम है हिन्दी में।
प्रत्यय-उपसर्ग युक्त शब्दों का प्रचलन कम है हिन्दी में।।

पर्यायवाची शब्दों का कम प्रचलन होता है हिन्दी में।
समानार्थक शब्दों का कम प्रचलन होता है हिन्दी में।। (3)

अनेकार्थक शब्दों का कम प्रचलन होता है हिन्दी में।
संक्षिप्तीकरण शब्दों का कम प्रचलन होता है हिन्दी में।।

शब्द-युग्म किन्तु भिन्नार्थ शब्दों का कम प्रयोग हिन्दी में।
प्रचलित व रूढ़ि शब्दों का ही अधिक प्रयोग है हिन्दी में।। (4)

सुने हुए कुछ शब्दों का ही प्रयोग होता है हिन्दी में।
साहित्य/(ग्रंथों) में जो शब्द पढ़ते उसका कम प्रयोग होता हिन्दी में।।

अनेक विध शब्दों के बदले कुछ शब्द प्रयोग होता हिन्दी में।

यथा बात-चीज-पता-चक्कर-लफड़ा (आदि) अधिक प्रयोग हिन्दी में।। (5)

इत्यादि अनेक कारणों से हिन्दी भाषा न बन पाई श्रेष्ठ-ज्येष्ठ।
अतः श्रेष्ठ हिन्दी भाषा नहीं समझ पाते हैं अधिक हिन्दी भाषी।।

इसलिए मेरी भाषा-कविता-रचना कम समझ पाते हिन्दी भाषी।
अतः (इनके) सुबोध हेतु सरल हिन्दी प्रयोग प्रयत्नशील 'कनक सूरी'।। (6)

चितरी, दिनांक 22.10.2017, अपराह्न 5.45

(यह कविता मेरे भक्त-शिष्य आचार्य से ले प्राचार्य व जनता तक की भाषिक कमी के कारण सृजित हुई।)

हाय रे! दयालु भारत तेरी!?

(भारत की दुर्दशा का व्यंगात्मक वर्णन)

(चाल : नगरी-नगरी पर्वत-पर्वत.....)

हाय रे! दयालु भारत तेरी..दया मया तो अपरम्पार!..2
अन्नदाता तो भूखे मरते..परोपजीवी पाये धन अपार..2 (स्थायी)

अन्नदाता है सभी के दाता, राजा से लेकर प्रजा तक।
वैज्ञानिक दार्शनिक लेखक संत व्यापारी से तो उद्योगपति तक।।

उन्हें उपेक्षित-अपमान करो उनका शोषण से निन्दा तक।
उनका खाते उन्हें भी खाते उनके नाम पर राजनीति तक।।

सर्वोदयी शिक्षा होती 'सा विद्या या विमुक्तये' व ज्ञानामृत।
अभी की शिक्षा तो इससे विपरीत तोतारटंत व फर्जी डिग्री तक।।

फैशन-व्यसन व दिखावा-आडंबर आलस्य-प्रमाद हो गई।
नौकर बनना व शादी करना सामाजिक प्रतिष्ठा रूप हो गई।।

'ज्ञानार्थे प्रवेश व सेवार्थे प्रस्थान' से विपरीत शिक्षा तेरी हो गई।
अन्याय-अत्याचार-भ्रष्टाचार-तनाव से ले मृत्यु के कारण बन गई।।

साक्षर बनकर नौकर बनके स्वयं को नौकरशाह भी मानते।

कर्त्तव्य न करते भ्रष्टाचार करके स्व-पर को क्षति पहुँचाते।।

व्यापार में मिलावट व जमाखोरी करके उपभोक्ता को चूसते।
धन के साथ स्वास्थ्य भी चूसते अकाल मरण तक उन्हें देते।।

राजनीति में तो नीति ही लोप है राज्य प्राप्ति (सत्ता) हेतु करो कुकाम।
अन्याय-अत्याचार-भ्रष्टाचार से लेकर करते हो राष्ट्रद्रोह काम।।

न्याय के प्रतीक मूर्ति की आँखों पर केवल नहीं बंधी है काली पट्टी।
लंबी-प्रक्रिया व खर्चीली आदि से न्याय नीति ही बनाई अंधी।।

धर्म तो सर्वोच्च परम पावन-ज्ञान-विज्ञान से सहित है।
इह परलोक सुखकर उदार आध्यात्मिक गुणों से सहित है।।

इसके कारण बना था विश्वगुरु भारत जो देवों से भी वंदित था।
अभी तो धर्म को भी विकृत बनाया जिससे घट रही गरिमा।।

अतएव व्यक्ति-परिवार से लेकर राष्ट्र की गरिमा घटी।
देव भी क्या गुणगान करेंगे धरती में भी गरिमा घटी।।

उक्त दुर्गुणों को दूर कर भारत जिससे बनोगे विश्वगुरु।
सुगुणों से भारत विकास करे ऐसी भावना करे 'कनक गुरु'।।

चितरी, दिनांक 16.10.2017, रात्रि 9.45

प्रदूषण से भारत में सबसे ज्यादा मौतें

-बाल मुकुंद ओझा

देश की राजधानी दिल्ली में हवा मानक स्तर से ज्यादा है। दुनिया के 20 सबसे प्रदूषित शहरों में से 13 हमारे देश के हैं। भारत में सबसे ज्यादा वायु प्रदूषण दिल्ली में है। दिल्ली में साँस के रोगियों की संख्या और इससे मरने के मामले सर्वाधिक हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने भी प्रदूषण पर अपनी चिंता जाहिर की है। सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली में प्रदूषण के बढ़ते खतरे के कारण दिवाली पर पटाकों की बिक्री पर रोक लगाई थी हालाँकि इस रोक का कोई ज्यादा असर देखने को नहीं मिला।

पर्यावरण प्रदूषण एक विश्वव्यापी समस्या है। पेड़-पौधे, मानव, पशु-पक्षी सभी उसकी चपेट में है। कल-कारखानों से निकलने वाला उत्सर्जन, पेड़-पौधों की कटाई, वायु, जल और ध्वनि प्रदूषण ने मानव जीवन के समक्ष संकट खड़ा कर दिया है।

लैंसेट जर्नल नामक एक पत्रिका में शुक्रवार को प्रकाशित एक अध्ययन में पर्यावरण प्रदूषण से मानव जीवन को होने वाली हानि की जानकारी दी गई है। मीडिया में प्रकाशित रिपोर्ट में प्रदूषण से होने वाले भयावह खतरे और अकाल मौतों से अवगत कराया गया है। प्रदूषण से होने वाली मौतों में भारत सबसे टॉपर पर है। रिपोर्ट के अनुसार भारत में 2015 में वायु, जल, ध्वनि और दूसरे तरह के प्रदूषणों की वजह से दुनिया में सबसे ज्यादा मौत हुई। प्रदूषण की वजह से उस साल देश में 25 लाख लोगों की जान गई। शोधकर्त्ताओं ने कहा कि इनमें से अधिकतर मौतें प्रदूषण की वजह से होने वाली दिल की बीमारियों, स्ट्रोक, फेफड़ों के कैंसर और साँस की गंभीर बीमारी सीओपीडी जैसी गैर संचारी बीमारियों की वजह से हुई। प्रदूषण की वजह से दुनिया भर में प्रतिवर्ष करीब 90 लाख लोगों की मौत होती है जो कुल मौतों का छठा हिस्सा है। अध्ययन के मुताबिक वायु प्रदूषण इसका सबसे बड़ा कारक है जिसकी वजह से 2015 में दुनिया में 65 लाख लोगों की मौत हुई जबकि जल प्रदूषण (18 लाख मौत) और कार्यस्थल से जुड़ा प्रदूषण (8 लाख मौत) अगले बड़े जोखिम है। शोधकर्त्ताओं में दिल्ली में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) दिल्ली और अमेरिका के इकाह्न स्कूल ऑफ मेडिसिन के विशेषज्ञ शामिल थे। शोधकर्त्ताओं ने कहा कि प्रदूषण से जुड़ी 92 फीसद मौत निम्न से मध्यम आय वर्ग में हुई। देश की राजधानी दिल्ली में हवा मानक स्तर से ज्यादा है। दुनिया के 20 सबसे प्रदूषित शहरों में से 13 हमारे देश के हैं। भारत में सबसे ज्यादा वायु प्रदूषण दिल्ली में है। दिल्ली में साँस के रोगियों की संख्या और इससे मरने के मामले सर्वाधिक हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने भी प्रदूषण पर अपनी चिंता जाहिर की है। सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली में प्रदूषण के बढ़ते खतरे के कारण दिवाली पर पटाकों की बिक्री पर रोक लगाई थी हालाँकि इस रोक कोई ज्यादा असर देखने को नहीं मिला।

प्रदूषण का अर्थ है हमारे आसपास का परिवेश गंदा होना और प्राकृतिक संतुलन में दोष पैदा होना। प्रदूषण कई प्रकार का होता है जिनमें वायु, जल और ध्वनि

प्रदूषण मुख्य है। पर्यावरण के नष्ट होने और औद्योगिकरण के कारण प्रदूषण की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है जिसके फलस्वरूप मानव जीवन दूभर हो गया है। महानगरों में वायु प्रदूषण अधिक फैला है। वहाँ चौबीसों घंटे कल-कारखानों और वाहनों का विषैला धुआँ इस तरह फैल गया है कि स्वस्थ वायु में साँस लेना दूभर हो गया है। यह समस्या वहाँ अधिक होती है जहाँ सघन आबादी होती है और वृक्षों का अभाव होता है। कल-कारखानों का दूषित जल नदी-नालों में मिलकर भयंकर जल प्रदूषण पैदा करता है। बाढ़ के समय तो कारखानों का दुर्गंधित जल सब नाली-नालों में घुलमिल जाता है। इससे अनेक बीमारियाँ पैदा होती हैं। इसी भाँति ध्वनि प्रदूषण ने शांत वातावरण को अशांत कर दिया है। कल-कारखानों और यातायात का कानफाडू शोर, मोटर-गाड़ियों की चिल्ल-पों, लाउड स्पीकरों की कर्णभेदक ध्वनि ने बहरेपन और तनाव को जन्म दिया है। हमने प्रगति की दौड़ में मिसाल कायम की है मगर पर्यावरण का कभी ध्यान नहीं रखा जिसके फलस्वरूप पेड़-पौधों से लेकर नदी-तालाब और वायुमंडल प्रदूषित हुआ है और मनुष्य का साँस लेना भी दुर्लभ हो गया है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार वायु प्रदूषण से केवल भारत में 36 शहरों में प्रतिवर्ष 51 हजार 779 व्यक्तियों की अकाल मृत्यु हो जाती है। कोलकाता, कानपुर और हैदराबाद में वायु प्रदूषण से होने वाली मृत्यु दर पिछले तीन-चार वर्षों में दुगुनी हो गई है। एक अनुमान के अनुसार भारत में प्रदूषण के कारण हर दिन करीब 150 लोग मर जाते हैं और हजारों लोग फेफड़े और हृदय की बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। दूसरी सबसे बड़ी समस्या जल प्रदूषण की है। कारखानों का कचरा, प्रदूषित जल नदी, तालाबों में निःसंकोच छोड़ दिया जाता है। इससे जल स्रोत प्रदूषित हो गये हैं और कालांतर में यही जल पीने से हमारा स्वास्थ्य बहुत बुरी तरह प्रभावित हुआ है और हम अनेक जानलेवा बीमारियों से पीड़ित हो गये। इसके अलावा वृक्षों की अंधाधुंध कटाई ने भी पर्यावरण को बहुत अधिक क्षति पहुँचाई है। विश्व में हर साल एक करोड़ हैक्टेयर से अधिक वन काटा जाता है। भारत में 10 लाख हैक्टेयर वन प्रतिवर्ष काटा जा रहा है। वनों के कटने से वन्य जीव भी लुप्त होते जा रहे हैं। वनों के क्षेत्रफल के नष्ट हो जाने से रेगिस्तान के विस्तार में मदद मिल रही है।

मानव जीवन के लिए पर्यावरण का अनुकूल और संतुलित होना बहुत जरूरी है। पर्यावरण के प्रदूषित होने से हमारे स्वस्थ जीवन में काँटे पैदा हो गये हैं। विभिन्न असाध्य बीमारियों ने हमें असमय अंधे कुएँ की ओर धकेल दिया है जिसमें गिरना तो आसान है मगर निकलना भारी मुश्किल। यदि हमने अभी से पर्यावरण संरक्षण पर ध्यान नहीं दिया तो आने वाला मानव जीवन अंधकारमय हो जायेगा। यह प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह अपने आस-पड़ौस के पर्यावरण को साफ-सुथरा रखकर पर्यावरण को संरक्षित करे तभी हमारे सुखमय जीवन को सुरक्षित और संरक्षित रखा जा सकता है।

जहाँ समस्या वहाँ ही समाधान

(भौतिक से लेकर आध्यात्मिक दृष्टिकोण से)

(चाल : आत्मशक्ति.....)

जहाँ समस्या है वहाँ समाधान विश्व के हर क्षेत्र में।
जहाँ गाँठ/(ग्रंथि) है वहाँ ही खुलेगी अन्यत्र न खुलेगी वह गाँठ है।।

द्वि-अणुक स्कंध से लेकर अनंतानंत परमाणु के स्कंध में।
यह प्रक्रिया ही सर्वत्र संभव सूक्ष्म से लेकर स्थूल में।।

आस्रव-बंध-संवर-निर्जरा तथाहि मोक्ष प्रक्रिया में।
यह प्रक्रिया ही प्रयोग होती यह नियम है कर्म सिद्धांत में।। (1)

जिस अंधेरा को दूर करना है वहाँ ही करना होगा प्रकाश।
जिसके रोग दूर करना है उसका करना होगा उपचार।।

स्वयं को शांति प्राप्त करना है तो सर्वदोष दूर करना होगा।
अन्यथा शांति नहीं मिलेगी यथा सिद्धक्षेत्र के निगोदिया।। (2)

अज्ञान-मोह-असंयम (आदि) के कारण जीव समाधान अन्यत्र ढूंढ़े।
स्वयं के रोग दूर करने हेतु अन्य को ही उपदेश झाड़े।।

जिस आग को बुझाना है उसको शांत करना होगा।
दूरस्थ अन्य आग बुझाने पर विवक्षित आग क्या बुझेगा।। (3)

आध्यात्मिक साधक अतः स्व के दोष दूर हेतु करते यत्न।
समता-शांति-आत्मविशुद्धि से पाते है शाश्वत मोक्ष।।

शांति-कुंथु व अरहनाथ भी जो थे तीन-तीन पदवीं धारी।
उन्हें भी स्व-समस्या विनाश हेतु प्राप्त करनी पड़ी मुक्ति।। (4)

इसलिये उन्होंने राज्य वैभव त्यागकर साधु बनकर साधना की।
समस्त समस्याओं के मूल कारण कर्म नाशकर पाई मुक्ति।।

यह है परम समाधान उपाय अन्य सभी होते गौण उपाय।
यथायोग्य उपाय द्वारा तथा योग्य होता है समाधान।। (5)

हर समस्या की होती दीर्घ श्रृंखला कार्य-कारण व निमित्त-उपादान।
पूर्ण समाधान उपाय से ही होती समस्या का पूर्ण समाधान।।

भावात्मक उपायों के साथ-साथ ही यथायोग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल चाहिए।
समता-शांति-आत्मविशुद्धि-क्षमा-सहिष्णुता आदि मुख्य चाहिए।। (6)

अन्यथा केवल भौतिक साधन/(विज्ञान) व क्रिया-प्रतिक्रिया से न होता समाधान।
न्याय-राजनीति-रीति-रिवाज शोषण-दबाव से नहीं संभव।।

तीर्थंकर आदि महापुरुषों से ज्ञात हुआ है ऐसा परम उपाय।
दीर्घ अनुभव से 'कनकनंदी' भी सत्य पाया है उक्त उपाय।। (7)

चितरी, दिनांक 13.10.2017, रात्रि 8.48

(इस विषय के विशेष परिज्ञानार्थे कविकृत कृतियाँ-1. पुण्य-पाप मीमांसा, 2. भाग्य एवं पुरुषार्थ, 3. कर्म-सिद्धांत, 4. निमित्त-उपादान मीमांसा, 5. अनेकांत सिद्धांत आदि का अध्ययन करें।)

संदर्भ-

बंध एवं मोक्ष का सिद्धांत

बध्यते मुच्यते जीवः सममो निर्ममः क्रमात्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिन्तयेत्।। (26)

The soul involved in the delusion of egoity is enmeshed in

the bondage of karmas; he who is free from delusion of egoity is freed from the bondage of karma; this is the order of things; Such being the law, one should try in all possible ways to atain to pure self-contemplation devoid of the delusion of egoity.

निवृत्तिं भावयेद्यावन्निवृति तद्भावतः।
न वृत्तिर्न निवृत्तिश्च तदेव पदमव्ययमं।। (आत्मानुशासनम्)

यहाँ पुनः शिष्य प्रश्न करता है, हे गुरुदेव! यदि आध्यात्मयोग से कर्म एवं आत्म का विश्लेषण अर्थात् पृथक्करण होता है तब कर्म एवं आत्मप्रदेश के संश्लेषप्रवेश रूप बंध किस उपाय से होता है? बंधपूर्वक ही मोक्ष होता है अर्थात् बंध के प्रतिपक्षी मोक्ष है इसलिये बंध के विरोध रूप जो संपूर्ण कर्म विश्लेष रूप मोक्ष है जो कि जीव के अनंत सुख के लिए कारणभूत है जिसके लिए योगीजन भी प्रार्थना करते है उसका कारण बताएँ? इस प्रश्न के उत्तर में आचार्यश्री कहते हैं-

ममत्व परिणाम के कारण यह जीव कर्मों को बाँधता है अर्थात् स्व-आत्मा को छोड़कर अन्य बाह्य चेतन-अचेतन, मिश्र रूप पर द्रव्य में जो यह मेरा है ऐसा रागरूप ममत्व अभिनिवेश है उसके कारण जीव कर्म को बाँधता है। समयसार कलश में कहा भी है-

कार्माण वर्गणाओं से भरा हुआ यह विश्व बंध के लिए कारण नहीं है और न चलन रूप कर्म कारण है, न इन्द्रियाँ कारण है, न चेतन-अचेतनात्मक पदार्थ कारण है परन्तु जो जीव का रागादि के साथ संबंध है वही निश्चय से बंध का कारण है।

इसी प्रकार ममत्व परिणाम से विपरीत निर्ममत्व परिणाम से यह जीव कर्म से मुक्त हो जाता है ऐसा क्रम यथा योग्य संयोग कर लेना चाहिए। ज्ञानार्णव में कहा भी है-

''**मैं समस्त पर संयोग से रहित अकिंचन्य स्वरूप हूँ**'' इस भाव से और तद्रूप परिणमन से जीव तीन लोक के अधिपति बन जाता है। यह रहस्य केवल योगीगम्य है जो कि तुम्हें बताया गया है अर्थात् अकिंचन्य रूप निर्मल/पवित्र भाव बिना कोई भी जीव उस ईश्वरत्व भाव को प्राप्त नहीं कर पाता है अथवा रागी कर्म को बाँधता है, वीतरागी विमुक्त हो जाता है। यह बंध मोक्ष का संक्षिप्त कथन जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कहा हुआ है। इसीलिये संपूर्ण प्रयत्न से मन-वचन-काय प्रणिधान पूर्वक

निर्ममत्व भाव को चिंतन करना चाहिए। ''**मैं इस जड़ात्मक शरीर से भिन्न निर्मल ज्योति स्वरूप हूँ।**'' ऐसा चिंतवन श्रुतज्ञान भावना के बल पर मुमुक्षु जन को विशेष रूप से भाना चाहिए। कहा भी है-

तब तक निवृत्ति की भावना भानी चाहिए जब तक निवृत्ति संभव है। जहाँ पर न निवृत्ति है न ही प्रवृत्ति है वही अव्यय अविनाशी परम पद है।

रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा।

एसो बंध समासो जीवाणं जाण णिच्छयदो।। (179)

समीक्षा-आचार्यश्री ने इस गाथा में बंध एवं मोक्ष का संक्षिप्त एवं सारगर्भित कारण को बतलाया है। आसक्ति युक्त जीव बंध को प्राप्त करता है और निरासक्ति युक्त जीव मोक्ष को प्राप्त करता है। केवल चारित्र मोहजनित राग ही बंध के लिए कारण नहीं है परन्तु समस्त वैभाविक भाव बंध के लिए कारण है। तथापि राग कर्म को बाँधता है ऐसा जो आध्यात्मिक शास्त्र में वर्णन पाया जाता है, उसका कारण यह है कि साम्परायिक आस्रव के लिए जो कारण है उसमें राग बंध में अंतिम कारण हैं। सूक्ष्म साम्पराय (10वें गुणस्थान) के अंतिम समय तक सूक्ष्म लोभ कषाय के कारण बंध होता है और लोभ राग है इसलिये अंतदीपक की अपेक्षा राग को बंध के लिए कारण कहा गया है परन्तु इसके पहले-पहले के प्रत्यय है मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद तथा संज्वलन, क्रोध, मान, माया कषाय भी कर्मबंध के लिए कारण है। इसलिये राग कहने से पहले-पहले के समस्त कारण उसमें गर्भित हो जाते हैं। जीव रागरहित 10वें गुणस्थान के अंत में हो जाते हैं। उसके बाद भी योग के कारण आस्रव एवं बंध होता है तथापि वह आस्रव एवं बंध संसार के लिए कारण नहीं है। इसलिये कहा गया है कि वीतरागी जीव कर्म से छूट जाता है तथापि सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर वीतरागी छद्मस्थ, (11वें गुणस्थान), क्षीण कषाय (12वें गुणस्थान) वीतराग सर्वज्ञ (13वें गुणस्थान) वाला जीव भी यथा-योग्य आस्रव एवं बंध को करता है परन्तु यह बंध अनंत संसार का कारण नहीं है इसलिये इसको बंधरूप में स्वीकार नहीं किया। राग को बंध के लिए कारण इसलिये कहा है कि जहाँ राग होगा वहाँ द्वेष अवश्य ही होगा, क्योंकि द्वेष का 9वें गुणस्थान के अंत में अभाव हो जाता है और 10वें गुणस्थान में लोभ (राग) का अभाव होता है। यह भी कारण है कि राग के कारण ही द्वेष उत्पन्न

होता है। यदि किसी वस्तु के प्रति राग नहीं है तो द्वेष भी उत्पन्न नहीं होगा इसलिये जहाँ राग है वहाँ द्वेष होगा और राग-द्वेष दोनों मिलकर के कर्मबंध के लिए कारण बनते हैं। ज्ञानार्णव में शुभचंद्राचार्य ने कहा भी है-

यत्र रागः पदं धत्ते द्वेषस्तत्रास्ति निश्चयः।

उभावेतौ समालम्बविक्रमत्यधिकं मनः।। (25) अ.23

जहाँ राग अपने पैर को रखता है वहाँ द्वेष भी निश्चय से विद्यमान रहता है। राग और द्वेष मिलकर के मन को अधिक विकृत बलशाली बना देते हैं जिससे कर्मबंध होता है।

क्रोध, शोक, मान, अरति, भय, जुगुप्सा ये 6 प्रकार के भाव द्वेष रूप माने गये हैं और माया, लोभ, हास्य, रति, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसंकवेद इन सात प्रकार के भावों को राग रूप माना गया है। यानि राग और द्वेष में समस्त विकारी भावों का समावेश किया जाता है, इनसे ही कर्मबंध होकर संसार में भ्रमण होता है।

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपण्णो।

एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मा रज्ज।। (150) समयसार पृ. 213

जो रागी है, वह अवश्य कर्मों को बाँधता ही है और जो विरक्त है, वही कर्मों से छूटता है, ऐसा यह आगम का वचन है। वह सामान्यतः राग के निमित्त से कर्म शुभ-अशुभ ये दोनों हैं। उनको अविशेषकर बंध का कारण साधा है इसलिये उन दोनों ही कर्मों का निषेध करते हैं।

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो भणिदो।

रायादिविप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरि।। (167)

इस आत्मा में निश्चय से जो राग द्वेष मोह के मिलाप से उत्पन्न हुआ भाव है वह अज्ञानमय ही है। जैसे चुंबक पत्थर के संबंध से उत्पन्न हुआ भाव लोहे की सुई को चलाता है, उसी प्रकार वह अज्ञान भाव आत्मा को कर्म करने के लिए प्रेरणा करता है तथा उन रागादिकों के भेद ज्ञान से उत्पन्न हुआ जो भाव है, वह ज्ञानमय है। जैसे चुंबक पाषाण के संसर्ग बिना सुई का स्वभाव चलने रूप नहीं है उसी प्रकार आत्मा को कर्म करने में अनुत्साह रूप स्वभाव से स्थापित करता है इसलिये रागादिकों से

मिला हुआ अज्ञानमय भाव कर्म के कर्तृत्व में प्रेरक है इस कारण नवीन बंध का करने वाला है तथा रागादिक से न मिला हुआ भाव ही अपने स्वभाव का प्रगट करने वाला है। वह केवल जानने वाला ही है, वह नवीन कर्म का किंचिन्मात्र भी बंध करने वाला नहीं है।

अज्ञानान्मोहतो बन्धो नाऽज्ञाद्वीत-मोहतः।
ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्मोहिनोऽन्यथा।। (98)

'मोह-सहित' अज्ञान से बंध होता है- जो अज्ञान मोहनीय-कर्म प्रकृति लक्षण से युक्त है वह स्थिति अनुभाग रूप स्वफलदान-समर्थ कर्म-बंध का कर्त्ता है। जो अज्ञान मोह से रहित है वह (उक्त फलदान-समर्थ) कर्म-बंध का कर्त्ता नहीं है और जो अल्पज्ञान मोह से रहित है उससे मोक्ष होता है, परंतु मोह सहित अल्पज्ञान से कर्मबंध ही होता है।

पहले स्त्री, पुत्र, पति, धन, शरीरादि के प्रति जो अशुभ राग है उसे त्याग करके देव, शास्त्र, गुरु, धर्म, व्रत, संयम प्रति प्रशस्त शुभ राग करना चाहिए, साधना के बल पर संपूर्ण विषमताओं को त्याग करते-करते शुभ राग को भी त्याग करके परमसमरसी भाव में स्थिर होना चाहिए जिससे, समस्त शुभाशुभ भाव के अभाव से पाप-पुण्य से भी जीव मुक्त हो जाता है।

पंचास्तिकाय में कहा भी है-

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि।
सो तेण वीदरागो भवियो भवसायरं तरदि।। (172)

क्योंकि इस शास्त्र में मोक्षमार्ग व्याख्यान के संबंध में मोक्ष का मार्ग उपाधि रहित चैतन्य के प्रकाश रूप वीतराग भाव को ही दिखलाया है इसलिये केवलज्ञान आदि अनंत गुणों की प्रगटता रूप कार्य समयसार से कहने योग्य मोक्ष को चाहने वाला भव्य जीव अरहंत आदि में भी स्वानुभव रूप राग भाव न करे-इस राग रहित चैतन्य ज्योतिमई भाव से वीतरागी होकर वह प्राणी संसार सागर को पार करके अनंत ज्ञानादि गुण रूप मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। यह संसार सागर अजर-अमर पद से विपरीत है, जन्म, जरा, मरण आदि रूप नाना प्रकार जलचर जीवों से भरा हुआ है, वीतराग परमानंदमई एक सुख-रस के आस्वाद को रोकने वाले नारकादि दुःख रूप

खारे जल से पूर्ण है, रागादि विकल्पों के विषयों की इच्छा को आदि लेकर सर्व शुभ-अशुभ विकल्प जाल रूप तरंगों की माला से भरपूर है, वह जिसके भीतर आकुलता रहित परमार्थ सुख से विपरीत आकुलता को पैदा करने वाली नाना प्रकार मानसिक दुःख रूप वडवानल की शिखा जल रही है।

इस तरह पहले कहे प्रकार से इस प्राभृत शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता को ही जानना चाहिए। वह वीतरागता निश्चय तथा व्यवहारनय से साध्य व साधक रूप से परस्पर एक-दूसरे की अपेक्षा से ही होती है-बिना अपेक्षा के एकांत से मुक्ति की सिद्धि नहीं हो सकती है। जिसका भाव यह है कि जो कोई विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावमय शुद्ध आत्म तत्त्व के भले प्रकार श्रद्धान ज्ञान व चारित्र रूप निश्चय मोक्षमार्ग की अपेक्षा बिना केवल शुभ चारित्र रूप व्यवहारनय को ही मोक्षमार्ग मान बैठते हैं वे इस भाव से मात्र देव लोक आदि के क्लेश को भोगते हुए परंपरा से इस संसार में भ्रमण करते रहते हैं, परंतु जो ऐसा मानते हैं कि शुद्धात्मानुभूति रूप मोक्षमार्ग है तथा जब उनमें निश्चय मोक्षमार्ग के आचरण की शक्ति नहीं होती है तब निश्चय के साधक शुभ चारित्र को पालते हैं तब वे सराग सम्यग्दृष्टि होते हैं फिर वे परंपरा से मोक्ष को पाते हैं। इस तरह व्यवहार के एकांत पक्ष को खण्डन करने की मुख्यता से दो वाक्य कहे गए तथा जो एकांत से निश्चयनय का आलंबन लेते हुए रागादि विकल्पों से रहित परम समाधि रूप शुद्धात्मा का लाभ न पाते हुए भी तपस्वी के आचरण के योग्य सामायिकादि छः आवश्यक क्रिया के पालन का व श्रावक के आचरण तथा व्यवहार दोनों मार्गों से भ्रष्ट होते हुए निश्चय तथा व्यवहार आचरण के योग्य अवस्था से जो भिन्न कोई अवस्था उसको न जानते हुए पाप को ही बाँधते हैं तथा जो शुद्धात्मा अनुभव रूप निश्चय मोक्षमार्ग को तथा उसके साधक व्यवहार मोक्षमार्ग को मानते हैं परंतु चारित्र मोह के उदय से शक्ति न होने पर यद्यपि शुभ व अशुभ चारित्र से रहित शुद्धात्मा की भावना की अपेक्षा सहित शुद्ध चारित्र को पालने वाले पुरुषों के समान नहीं होते हैं तथापि सराग सम्यक्त्व को आदि लेकर दान-पूजा आदि व्यवहार में रत ऐसे सम्यग्दृष्टि होते हैं वे परंपरा से मोक्ष को पा लेते हैं। इस तरह निश्चय के एकांत को खण्डन करते हुए दो वाक्य कहे। इससे यह सिद्ध हुआ कि निश्चय तथा व्यवहार परस्पर साध्य साधक रूप से मानने योग्य हैं। इसी के द्वारा रागादि विकल्प रहित परम समाधि के बल से ही

मोक्ष को ज्ञानी जीव पाते हैं।

महात्मा बुद्ध ने भी कहा है-

सिञ्च भिक्खु! इमं नावूं सित्ताते लहुमेस्सति।

छेत्वा रागञ्च दोसञ्च ततो निब्बानमेहिसि।। (10)

भिक्षु! इस नाव को उलीचने पर यह तुम्हारे लिए हल्की हो जायेगी। राग और द्वेष को छिन्न (क्षीणकर) फिर तुम निर्वाण को प्राप्त होगे।

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूड सामली।

अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नन्दणं वणं।। (36)

मेरी अपनी आत्मा ही वैतरणी नदी है, कूट-शाल्मलि वृक्ष है, काम-दुग्ध धेनु है और नंदन वन है।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।

अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय-सुपट्ठिओ।। (37)

''आत्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्त्ता है और विकर्त्ता-भोक्ता है। सत्-प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में स्थिति आत्मा ही अपना शत्रु है।''

एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इन्दियाणि य।

ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी।। (38)

''मुने! न जीता हुआ एक अपना आत्म ही शत्रु है। कषाय और इन्द्रियाँ भी शत्रु हैं। उन्हें जीतकर नीति के अनुसार मैं विचरण करता हूँ।''

क्रोध, मान, माया और लोभ-ये पाप को बढ़ाने वाले हैं। आत्मा का हित चाहने वाला इन चारों दोषों को छोड़े।

कोध य माणो य अणिग्गहीया, माया य लोभो य पवड्डमाणा।

चत्तारि ए ए कासिणा कसाया, सिंचति मूलाइं पुण भवस्स।।

अनिगृहीत क्रोध और मान, प्रवर्द्धमान माया और लोभ-ये चारों संक्लिष्ट कषाय पुनर्जन्मरूपी वृक्ष की जड़ों का सिंचन करते हैं।

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणय नासणो।

माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो।।

क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का नाश करने वाला है, माया मैत्री का विनाश करती है और लोभ सब (प्रीति, विनय और मैत्री) का नाश करने वाला है।

उवसमेण हणे कोइं, माणं मछवया जिणे।

माणं चाज्जवभावेण, लोभं संतोसओ जिणे।।

उपशम से क्रोध का हनन करे, मृदुता से मान को जीते, ऋजु भाव से माया को और संतोष से लोभ को जीते।

आत्मस्वरूप एवं परस्वरूप

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगोन्द्रगोचरः।

बाह्यः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा।। (27)

I am, one. I am without delusion, I am the knower of things, I am knowable by master ascetics; all other conditions that arise by the union of the not-self are froeign to my nature in every way!

पुनः शिष्य प्रश्न करता है कि हे गुरु! किस प्रकार निर्ममत्व चिन्तन का उपाय है? गुरु निर्ममत्व का उपाय बताते हैं-

द्रव्यार्थिक नय से मैं एक हूँ, मैं ही पूर्व परावस्थाओं में अनुश्रुत रूप में रहने के कारण मैं एक हूँ यह मेरा है, मैं इसका हूँ इसी प्रकार अभिप्राय से शून्य होने के कारण निर्मम हूँ। शुद्ध नय की अपेक्षा द्रव्य कर्म, भाव कर्म से निर्मुक्त होने के कारण मैं शुद्ध हूँ। स्व-पर प्रकाश होने के कारण मैं ज्ञानी हूँ। अनंत पर्यायों को युगपत् जानने वाले केवलज्ञानी और श्रुतकेवली के शुद्धोपयोग स्वरूप ज्ञान का विषय हूँ, मैं स्वसंवेद्य के द्वारा जानने योग्य हूँ। जो द्रव्य कर्म के संबंध से प्राप्त भाव तथा देह आदि है वे सर्व मेरे से सर्वथा सर्व प्रकार से बाह्य है, भिन्न है।

समीक्षा-इस श्लोक में आचार्यश्री ने स्वयं को अनुभव करने के/ध्यान करने के/प्राप्त करने के कुछ उपाय बताये हैं। भले व्यवहार नय से द्रव्य कर्म आदि के संयोग से जीव में विभिन्न वैभाविक भाव तथा शरीर आदि पाये जाते हैं तथापि शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से यह आत्मा के स्वभाव नहीं है। ये सब पर संयोगज अशुद्ध भाव है। आचार्य कुंदकुंद देव ने समयसार में कहा भी है-

अहमिक्को खलु सुद्धो णिम्मओ णाणदंसणमग्गो।

तह्मि ठिओ तच्चित्तो सेस सव्वे खय णेमि।। (73)

टीका-यह मैं आत्मा हूँ सो प्रत्यक्ष अखंड, अनंत, चैतन्य मात्र ज्योति हूँ। अनादि, अनंत, नित्य उदयरूप, विज्ञानघन स्वभाव रूप से तो एक हूँ और समस्त कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, आदान, अधिकरण स्वरूप जो कारकों का समूह उसकी प्रक्रिया से पार उतरा दूरवर्ती निर्मल, चैतन्य अनुभूति मात्र रूप से शुद्ध हैं। जिनका द्रव्य स्वामी है ऐसे जो क्रोधादि भाव उनकी विश्व रूपता (समस्तरूपता) उनका स्वामित्व से सदा ही अपने नहीं परिणमने के कारण उनसे ममता रहित हूँ तथा वस्तु का स्वभाव सामान्य विशेष स्वरूप है इसीलिए चैतन्य मात्र तेज पुँज भी वस्तु है इस कारण सामान्य विशेष स्वरूप जो ज्ञानदर्शन उनसे पूर्ण हूँ। ऐसा आकाशादि द्रव्य की तरह परमार्थ स्वरूप वस्तु विशेष हूँ। इसलिए मैं इसी आत्म स्वभाव में समस्त पर द्रव्य से प्रवृत्ति की निवृत्ति करके निश्चल स्थित हुआ समस्त परद्रव्य के निमित्त से जो विशेष रूप चैतन्य में चंचल कल्लोलें होती थी, उनके विरोध से इस चैतन्य स्वरूप को ही अनुभव करता हुआ अपने ही अज्ञान से आत्मा में उत्पन्न क्रोधादिक भावों का क्षय करता हूँ ऐसा आत्मा में निश्चय कर तथा जैसे बहुत काल का ग्रहण किया जो जहाज या वह जिसने छोड़ दिया है, ऐसे समुद्र के भँवर की तरह शीघ्र ही दूर किये हैं समस्त विकल्प जिसने, ऐसा निर्विकल्प, अचलित निर्मल आत्मा को अवलंबन करता विज्ञानघन होता हुआ यह आत्मा आस्रवों से निवृत्त होता है।

आदिमध्यान्तहीनोऽहमाकाशसदृशोऽस्म्यहम्।
आत्मचैतन्यरूपोऽहमहामानंदचिद्घनः।
आनन्दामृतरूपोऽहमात्मसंस्भोऽहगन्तरः।
आत्मकामोहमाकाशात्परमात्मेश्वरोऽस्म्यहम्।। (92)
ईशानोऽस्म्यहमीड्योऽहमनुत्रमपुरुषः।
उत्कृष्टोऽहमुपद्रष्टाद्रहनुतरोऽस्म्यहम्।। (93)
केवलोऽहं कविः कर्माध्यक्षोऽहं करणाधिपः।
गुहाशयोऽहं गोप्ताऽहं चक्षुषश्चक्षुरस्म्यहम्।। (94)
चिदानन्दोऽस्म्यहं चेताश्रिद्घनश्रिन्मयोऽस्म्यहम्।

ज्योतिर्मयाऽस्म्यहंज्यायान्ज्योतिषांज्योतिरस्म्यहम्।। (95) (उपनिषद् पृ. 28)

मैं आदि मध्य और अंत से रहित हूँ आकाश के सदृश हूँ, मैं आत्म चैतन्य रूप हूँ, आनंद चेतन घन हूँ। मैं आनंदामृत रूप हूँ, आत्म संस्थित हूँ, अंतर हूँ, आत्मा काम हूँ और आकाश में परमात्मा परमेश्वर स्वरूप हूँ। मैं ईशान हूँ, पूज्य हूँ, उत्तम पुरुष हूँ, उत्कृष्ट हूँ, उपदृष्टा हूँ और पर से भी परे हूँ। मैं केवल हूँ, कवि हूँ, कर्माध्यक्ष हूँ, कारण का अधिपति हूँ, मैं गुप्त आशय हूँ, गुप्त रखने वाला हूँ, और नेत्रों का नेत्र हूँ, मैं चिदानन्द हूँ, चेतना देने वाला हूँ, चिद्घन और चिन्मय हूँ, मैं ज्योतिर्मय हूँ, और मैं ज्योतियों में श्रेष्ठ ज्योति हूँ।

एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण।
पुग्गल कम्म कदाणं ण दु कत्ता सव्वभावगं।। (82) समयसार

इस प्रकार जीव और पुद्गल के परस्पर में निमित्त कारणपना है इसका व्याख्यान किया गया है।

व्यवहार नय से भिन्न षट्कारक के अनुसार जीव के राग-द्वेष निमित्त पाकर कर्म परमाणु, द्रव्यकर्म रूप में परिणमन करता है। द्रव्यकर्म के उदय से भावकर्म उत्पन्न होते हैं परन्तु निश्चयनय से एक द्रव्य अन्य द्रव्य का कर्त्ता नहीं होने से जीव के परिणाम का हेतु पुद्गल नहीं है एवं पुद्गल के परिणाम का हेतु जीव नहीं है। पंचास्तिकाय में कहा है-

''निश्चयनयेनाभिन्नकारकत्वात्कर्मणो
जीवस्य च स्वयं स्वरूप कर्तृत्वमुक्तम्।''

निश्चय से अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के अपने-अपने रूप के कर्त्ता हैं। निश्चय से जीव, पुद्गल का कर्त्ता नहीं होने पर भी व्यवहार नय से कर्त्ता है।

स्व-हित करणीय

परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव।
अपकुर्वन्परस्याज्ञो दृश्यमानस्य लोकवत्।। (32)

O Witless one! thou art serving this visible show that is not

thyself; thou shouldst now renounce dowing good to others and take to dowing good to thine own self!

हे भव्य! अविद्या अर्थात् मोह के कारण जो तुमने देहादि पर द्रव्यों का उपकार किया है अभी विद्या के बल पर उस परोपकार को त्याग करके आत्मानुग्रह प्रधान बनो। शरीर आदि परद्रव्य हैं, क्योंकि शरीर पुद्गल से निर्मित हैं। जिस प्रकार कि लोक में अज्ञान अवस्था में लोग दूसरों के उपकार करते हैं, परन्तु ज्ञान होने के बाद दूसरों का उपकार त्याग करके स्व का उपकार करते है।

समीक्षा-इस श्लोक में आचार्य श्री ने लौकिक उदाहरण देकर यह समझाया कि जिस प्रकार लोक में बिना जाने शत्रु का भी उपकार कर लेते हैं परन्तु जब पता चल जाता है कि ये मेरा शत्रु है तब उसका उपकार छोड़कर आत्म-उपकार करते हैं, उसी प्रकार शरीर, धन सम्पति आदि जो परद्रव्य हैं, उसको मोही जीव अपना मानकर उसका संरक्षण संवर्द्धन करता है, परन्तु स्व-आत्म-द्रव्य को न जानता है, न मानता है, न उसका उपकार करता है। इसलिये दयालु परोपकारी आचार्य गुरुदेव भव्य को संबोधित करते हुये कहते हैं कि हे भव्य! तुम अनादिकाल से मोह से मोहित होकर स्व उपकार को भूलकर दूसरों के उपकार में ही लगे हुये हो। तुम अभी तक धोबी का काम, गधे का काम, गुलामी का काम करते आ रहे हो। जिस प्रकार धोबी दूसरों के गंदे कपड़े धोता रहता है उसी प्रकार तुमने भी दूसरों की गलती को देखकर उसको दूर करने में लगे हुए हो परन्तु स्वयं की गलती का भान तक तुम्हें नहीं है। जिस प्रकार गधा दूसरों का बोझ ढोता है उसी प्रकार तुम भी शरीर का, कुटुम्ब का, धन का, अभिमान ढो रहे हो, गधा अपने पीठ पर चन्दन की लकडी का भार केवल ढोता रहता है परन्तु चन्दन की सुगंधी तथा शीतलता का अनुभव नहीं करता है। इसी प्रकार जीव, शरीर, सम्पति कुटुम्ब का भार ढ़ोता रहता है। परन्तु आत्मा का आनन्द अनुभव नहीं करता है। वह उस भार को ही अपना सर्वस्व, गौरव, बडप्पन मान लेता है। जो अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि से धन कमाता है। उस धन के कारण वह स्वयं को बड़ा मान लेता है और दूसरे लोग भी उसको बडा मान लेते हैं। गुलाम जिस प्रकार मालिक के आधीन होकर उसके निर्देश के अनुसार दीन-हीन होकर मालिक की सेवा करता है। उसी प्रकार मोहीजीव शरीर, कुटुंब धन, संपति तथा राग

द्वेष के गुलाम बनकर उसकी नौकरी करता है और यह सब करता हुआ भी स्वयं को श्रेष्ठ मान लेता है। जो ज्ञान वैराग्य से सम्पन्न होकर परिवार तथा वैभवादि त्यागकर स्व-आत्म-कल्याण करना चाहता है, उसे भी ऐसे मोही जीव-दीन हीन असहाय गरीब मान लेता है। इसलिए आचार्य श्री ने यहाँ कहा कि हे मोही! तुमने अनंत संसार में दूसरो के लिए इतना रोया इतना आंसु बहाया कि यदि उस आँसु को इकट्ठा किया जाये तो अनेक समुद्र की जल-राशि से अधिक हो जायेगा अनंत बार तुम दूसरों के गुलाम, भाई, पिता, पुत्र, स्त्री आदि बने और दूसरे भी तुम्हारे अनन्त बार बने। इन सबके उपकार के लिए तुमने जितना परिश्रम किया उसका अनंतवा भाग भी स्वोपकार में लगाओगे तो तुम तीनलोक का स्वामी अर्थात् सिद्ध भगवान् बन जाओगे। इसलिए कुन्दकुन्दचार्य देव ने कहा है-''आदहिदं कादव्वं'' अर्थात् आत्महित अच्छी तरह से समग्रता से करना चाहिए। कहा भी है

पीओसिथणच्छीरं अणंतजम्मंतराइं जणजीणं।

अण्णण्णाण महाजस सायरसलिलादु अहिययरं।। (18) अ.पा.पृ. 265

हे महाशय के धारक मुनि! तूने अनन्त जन्मों में अन्य-अन्य माताओं के स्तन का इतना दूध पिया है जो समुद्र के जल से भी अत्यन्त अधिक है - अनन्तगुणित है।

तुह मरणे दुवरेणं अण्णाणं अणेय जणणीणं।

रूण्णाण णयणीरं सायरसलिलादु अहिययरं।। (19)

हे जीव! तेरा मरण होने पर दुःख से रोती हुई अन्य-अन्य अनेक माताओं का अश्रुजल समुद के जल से अत्यन्त अधिक है।

भवसायरे अणंते छिण्णुज्झिय के सणहरणालट्ठी।

पुंजेइ जइ को वि जार हवदि य गिरिसमधिया रासी।। (20)

हे जीव! तूने अनन्त संसार सागर में जिन केश, नख, नाभिनाल और हड्डियों को काटने के पश्चात् छोड़ा है यदि कोई यक्ष उन्हें इकट्ठा करे तो उनकी राशि पर्वत से भी अधिक हो जाये।

मादुपिदुसजणसंबंधिणो य सव्वे वि अत्तणो अण्णे।

इह तोग बंधवा ते ण य परलोगं समं णेंक्षि।। (720) मू.चा.पृ.6

माता-पिता और स्वजन सम्बन्धी लोग ये सभी आत्मा से भिन्न हैं। वे इस

लोक में तो बांधव है किन्तु परलोक में तेरे साथ नहीं जाते हैं।

अण्णो अण्णं सोयदि मदोत्ति मम णाहओत्ति मण्णंतो।
अत्ताणं ण दु सोवदि संसारमहण्णवे बुडुं।। (703)

वह जो मर गया, मेरा स्वामी है वैसा मानता हुआ अन्य जीव अन्य का शोक करता है किन्तु संसार-रूपी महासमुद्र में डूबे हुए अपने आत्मा का शोक नहीं करता है।

अण्णं इमं सरीरादिगं पि जं होज्ज बाहिरं दव्वं।
णाणं दंसणमादात्ति एवं चिंतेह अण्णत्तं।। (704)

यह शरीर आदि भी अन्य है पुनः जो बाह्य द्रव्य हैं वे तो अन्य हैं ही। आत्मा ज्ञानदर्शन स्वरूप है इस तरह अन्यत्व का चिन्तन करों।

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा कामदुहा धेणू अप्पा मे नन्दणं वणं।। (36)

''मेरी अपनी आत्मा ही वेतरणी नदी है, कूट-शाल्मलि वृक्ष है, काम-दुधा-धेनु है तथा नन्दन वन है।''

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुपट्ठिय - सुपट्ठिओ।। (37)

''आत्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्त्ता है और विकर्त्ता-भोक्ता है। सत् प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही शत्रु है।''

रु. 681 अरब की संपत्ति के मालिक और बेटा बन गया बौद्ध भिक्षु

आनंद कृष्णन-बिजनेसमैन, जन्म 1 अप्रैल 1938, शिक्षा-हार्वर्ड से एमबीए, परिवार-पहली शादी थाई राजकुमारी से हुई थी, जिससे बेटा और एक बेटी है। दूसरी शादी लेटचुइमी हेलेन मेरी से हुई, जो पेरिस में म्यूजिक रिकॉर्डिंग हाउस की मालिक हैं। इनसे एक बेटी है।

चर्चा में क्यों-681 अरब रु. की संपत्ति के मालिक इस मलेशियालाई बिजनेसमैन को सीबीआई ने एयरसेल-मैक्सिस सौदे में आरोपी ठहराया है।

दक्षिण-पूर्व एशिया के दूसरे और दुनिया के 99वें सबसे अमीर बिजनेसमैन आनंदा कृष्णन का बेटा अजाह श्रीपानो 2008 के आसपास अचानक लापता हो गया था। उन्होंने उसे बहुत ढूंढ़ा। कुछ पता न चला। इसी दौरान उन्हें किसी परिचित ने बताया कि उसने उनके बेटे की शक्ल से मिलता-जुलता लड़का उत्तरी थाईलैंड के बौद्ध भिक्षुओं के मठ में देखा है। वे तुरंत वहाँ पहुँचे। बेटे को गुरुए रंग के वस्त्र, छोटे-छोटे बाल और हाथ में भिक्षा माँगने वाला कटोरा देखकर वे दंग रह गये।

महल से घर के बजाये बेटे को जंगल में देखकर वे सदमे में चले गये। बेटा बौद्ध भिक्षु बन चुका था। उसे समझाने का कोई फायदा नहीं हुआ। उन्होंने बेटे से कम से कम उनके साथ भोजन करने का आग्रह किया। लेकिन अजाह ने इससे भी इनकार कर दिया। उसने पिता से कहा-मुझे माफ कीजिये। मैं आपका निमंत्रण स्वीकार नहीं कर सकता। मुझे दूसरे भिक्षुओं की तरह भिक्षा माँगकर ही अपने भोजन का इंतजाम करना है। आनंदा को इसका बेहद दुःख हुआ कि अरबों रुपये की संपत्ति होने के बावजूद वे अपने बेटे को भोजन तक नहीं करा सकते। इसके बाद आनंद को लौटना पड़ा। हालाँकि आनंदा जब भी किसी पारिवारिक कार्यक्रम में उसे बुलाते तो वह जरूरत आता है। 2011 में आनंदा का 70वाँ जन्मदिन था। वो उसे बेटे के साथ मनाना चाहते थे। उन्होंने बेटे को बुलाया और उसे अपने प्राइवेट जेट से भूटान के पारो लाये। यहाँ पुत्र ने पिता का जन्मदिन मनाया। मलेशिया के पब्लिक वर्क डिपार्टमेंट में काम कराने के लिए अंग्रेज आनंदा के दादा को श्रीलंका के जाफाना से यहाँ लाये थे। इसके बाद वे श्रीलंका नहीं लौटे और मलेशिया के लिटिल इंडिया कहलाने वाले ब्रिकफील्डस में ही बस गये। उनके बाद आनंदा के पिता भी यहाँ सरकारी नौकरी करने लगे थे।

आनंदा शुरू से ही पढ़ने में होशियार थे, इसलिये मेलबर्न यूनिवर्सिटी से पॉलिटिकल साइंस और इकोनॉमिक्स में ग्रेजुएशन करने के लिए उन्हें स्कॉलरशिप मिली थी। वे यहाँ पढ़ाई के साथ छात्रों के अखबार में काम करते। रिस्क लेने की आदत थी, इसलिये साथ में बेटिंग भी करते। हमेशा लो प्रोफाइल रहने वाले आनंदा का बिजनेस इंटरटेनमेंट से लेकर ऑयल, पॉवर, शिपिंग, टेलिकम्यूनिकेशंस और प्रॉपर्टी फील्ट्स में फँसा है। उनकी कमाई का एक चौथाई हिस्सा गैंबलिंग से आता हैं।

इच्छा तेरी अजस्त्रधारा.....

(अशुभ इच्छा, शुभ इच्छा और इच्छा से परे)

(चाल : गंगा तेरा अजस्त्रधारा.....)

'इच्छा' तेरी अजस्त्रधारा...सर्वत्र बहती जाये...
संसारी जीव तेरी धारा में''सर्वत्र बहती जाये...।। (ध्रुव)

तेरी प्रमुख दो धाराएँ हैं...अशुभ व शुभधारा...
अशुभधारा में संसार बढ़े...शुभधारा से घटे संसार...इच्छा...(1)

अशुभधारा में बहे उपधाराएँ...काम भोग व बंधमय...
शुभधारा में बहे उपधाराएँ...ज्ञान वैराग्यमय...इच्छा...(2)

'आहार इच्छा' से आहार में प्रवृत्ति...'निद्रा इच्छा' से निद्रा में...
'धनेच्छा' से धनार्जन में प्रवृत्ति...'भोग इच्छा' से भोग में...इच्छा...(3)

'प्रसिद्धि इच्छा' से ख्याति में प्रवृत्ति...'लाभ इच्छा' से लाभ में...
'वर्चस्व इच्छा' से सत्ता में (आदेश) प्रवृत्ति...हर कामना में तू निहित...इच्छा...(4)

'इच्छा निरोध होता है' तपः...ज्ञान वैराग्य संयुक्त...
मोक्ष की इच्छा करते 'मुमुक्षु'...ज्ञान की इच्छा से ज्ञानेक्षु...इच्छा...(5)

जानने की इच्छा से होती 'जिज्ञासा'...जीतने की इच्छा से 'जिगीषा'...
ज्ञान-ध्यान-तप-त्याग में प्रवृत्ति...होती है शुभकामना...इच्छा...(6)

इसकी साधना से जब इच्छा नशती...तब होती शुद्ध परिणति...
शुभ-अशुभ इच्छाएँ नशती...होती है शुद्ध-बुद्ध दशा
/('कनक' की स्वशुद्धात्मा दशा)...इच्छा...(7)

चितरी, दिनांक 25.10.2017, अपराह्न 5.35

संदर्भ-

शुभाशुभे पुण्य पापे सुख दुःखे च षट् त्रयम्।
हितमाद्यमनुष्ठेयं शेष त्रयमथाहितम्।। (269)

तत्राप्सद्यं परित्याज्यं शेषौ न स्तः स्वतः स्वयम्।
शुभं च शुद्धे त्यक्त्वान्ते प्राप्नोति परमं पद्म।। (240)

अर्थ-शुभ और अशुभ, पुण्य और पाप, सुख और दुःख इस प्रकार ये छः हुए। इन छहों के तीन युगलों में से आदि के तीन शुभ, पुण्य और सुख आत्मा के लिए हितकारक होने से आचरण के योग्य है तथा शेष तीन अशुभ-पाप और दुःख अहितकारक होने से छोड़ने के योग्य हैं।

विशेषार्थ-अभिप्राय यह है कि जिनपूजादिक शुभ क्रियाओं के द्वारा पुण्य कर्म का बंध होता है। इसके विपरीत हिंसा एवं असत्य संभाषणादि रूप अशुभ क्रियाओं के द्वारा पाप का बंध होता है और उस पाप कर्म के उदय में प्राप्त होने पर उससे दुःख की प्राप्ति होती है।

इसलिये उक्त छः में से शुभ पुण्य और सुख ये तीन उपादेय तथा अशुभ पाप और दुःख ये तीन हेय हैं।

पूर्व श्लोक में जिन तीन को शुभ पुण्य और सुख को हितकारक बतलाया है उनमें भी प्रथम का (शुभ का) परित्याग करना चाहिए। ऐसा करने से शेष रहे पुण्य और सुख ये दोनों स्वयं ही नहीं रहेंगे, इस प्रकार शुभ छोड़कर और शुद्ध स्वभाव में स्थित होकर जीव अंत में उत्कृष्ट पद (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है।

विशेषार्थ-ऊपर जो इस श्लोक का अर्थ लिखा गया है वह संस्कृत टीकाकार प्रभाचंद्राचार्य के अभिप्रायानुसार लिखा गया है। उपर्युक्त श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है। श्लोक 239 में जो अशुभ पाप और दुःख ये तीन अहितकारक बतलाये गये हैं उनमें भी प्रथम अशुभ का ही त्याग करना चाहिए। कारण यह है कि ऐसा होने पर शेष दोनों पाप और दुःख स्वयमेव नहीं रहते हैं इसलिये इनका मूल कारण अशुभ ही हैं। इस प्रकार जब मूल कारणभूत व अशुभ न रहेगा तब उसका साक्षात् कार्यभूत पाप स्वयमेव नष्ट हो जायेगा और जब पाप ही न रहेगा तो उसके कार्यभूत दुःख की भी कैसे संभावना की जा सकती है, नहीं की जा सकती है। इस प्रकार उक्त अहितकारक तीन के नष्ट हो जाने से शेष तीन जो शुभादि हितकारक रहते हैं वे भी वास्तव में हितकारक नहीं है उनको जो हितकारक व अनुष्ठेय बतलाया गया है वह अतिशय अहितकारी अशुभादिक अपेक्षा ही बतलाया है। यथार्थ

में वे भी परतंत्रता के कारण है। भेद इतना ही है कि जहाँ अशुभादिक जीव को नारक और तिर्यंच पर्याय प्राप्त कराकर केवल दुःख का अनुभव कराते हैं वहाँ वे शुभादिक उसको मनुष्यों और देवों में उत्पन्न कराते हैं। दुःख मिश्रित सुख का अनुभव कराते हैं। इसलिये यहाँ यह बतलाया है कि उन अशुभादिक तीन को छोड़ देने के पश्चात् शुद्धोपयोग में स्थित होकर उस शुभ को छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार अंत में उस शुभ के अविनाभावि पुण्य व सांसारिक सुख के भी नष्ट हो जाने पर जीव उस निर्बाध मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है जो कि अनंत काल तक स्थिर रहने वाला है।

वरं व्रतै पदं दैवं नाव्रतैर्वत नारकं।
छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्।। (3) (इष्टोपदेश)

अर्थ-व्रतों के द्वारा देव-पद प्राप्त करना अच्छा है किन्तु अव्रतों के द्वारा नरक पद प्राप्त करना अच्छा नहीं है। जैसे-छाया और धूप में बैठने वाले में अंतर पाया जाता है वैसे ही व्रत और अव्रत के आचरण व पालन करने वालों में फर्क पाया जाता है।

व्रतादिक पालने से पाप कर्मों की निर्जरा होती है और पुण्य कर्म का बंध होता है परंतु पुण्य बंध इहलोक व परलोक सुख का कारण है परंपरा से मुक्ति का कारण है।

शुभःशुभानुबन्धीति बन्धच्छेदाय जायते।
पारंपर्येण यो बन्धः स प्रबन्धाद्विधीयते।। (54) (धर्मरत्नाकर)

अर्थ-शुभ भाव से शुभानुबंधी होता है और शुभानुबंधी परंपरा से बंध छेद के लिए कारण हो जाता है। इसलिए शुभानुबंधी कर्म को प्रचुर रूप से करना चाहिए।

विशेषार्थ-शरीर में काँटा घुसने के बाद उस काँटे को निकालने के लिए एक सुदृढ़ काँटा चाहिए, शरीर स्थित काँटे को जब तक नहीं निकालते तब तक इस सुदृढ़ काँटे की परम आवश्यकता है। शरीर स्थित काँटा निकालने के बाद उस सुदृढ़ काँटे के समान है। उस पापकर्म को निकालने के लिए एक काँटा की आवश्यकता स्वयमेव नहीं रहती, उसी प्रकार कर्म देह स्थित सुदृढ़ पुण्यरूपी काँटा चाहिए, पापरूपी काँटा निकालने के बाद पुण्यरूपी काँटे की आवश्यकता स्वयंमेव हट जाती है। जैसे-मलिन वस्तु के संपर्क से वस्त्र अस्वच्छ हो जाता है। उस अस्वच्छता को हटाने के लिए

पानी, साबुन, टिनोपॉल चाहिए। पानी और साबुन के प्रयोग से जब वस्त्र स्वच्छ हो जाता है तब उस वस्त्र पर लगे हुए साबुन को स्वच्छ पानी से धोकर निकाल देते हैं। वस्त्र स्वच्छ होने के बाद उसको टीनोपॉल में डालकर चमकाते हैं। वस्त्र से साबुन और पानी अलग वस्तु है (परद्रव्य है)। तो भी बिना पानी और साबुन से मलिन वस्त्र स्वच्छ नहीं होता है। परंतु स्वच्छ होने के बाद साबुन और पानी की आवश्यकता नहीं रहती है। मलिन अवस्था में टीनोपॉल वस्त्र को लगाने पर उसमें चमक नहीं आ सकती है। इसी प्रकार आत्मा को स्वच्छ करने के लिए शुभभावरूपी पानी और पुण्यरूपी साबुन चाहिए। इसके माध्यम से मलिन पापात्मा का पवित्र पुण्यात्मा होने के बाद शुक्लध्यानरूपी टीनोपॉल से उसको केवलज्ञान रूपी प्रकाश से चमकाना चाहिए। जब तक आत्मा को शुभ भाव और पुण्य से स्वच्छ नहीं करते तब तक शुक्लध्यान रूपी टीनोपॉल का किसी प्रकार परिणाम नहीं हो सकता है। वस्त्र स्वच्छ होने के बाद उस वस्त्र में स्थित पानी को भी निकाल देते हैं। इसी प्रकार अयोग केवली 14वें गुणस्थान की अवस्था में व्युपरत क्रिया निवृत्तिरूपी परम शुक्लध्यान से पुण्यरूपी कण को भी सुखाकर पृथक् करना चाहिए तब जाकर आत्मा निरंजन निष्कलंक होता है।

अहो पुण्यवन्ता पुंसां कष्टं चापि सुखायते।
तस्माद्भव्यैः प्रयत्नेन कार्य पुण्यं जिनोदितः।।

अर्थ-अहो आश्चर्य की बात है कि पुण्यवान् के लिए कष्ट भी सुखकर हो जाता है, इसलिए हे भव्य! जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्रतिपादित पुण्य को तुम प्रयत्नपूर्वक करो।

यस्य पुण्यं च पापं च निष्फलं गलति स्वयम्।
स योगी तस्य निर्वाणं न तस्य पुनरास्रवः।। (246)

अर्थ-जिनका कर्म उदय में आकर भी बिना फल दिये खिर जाता है वह योगी है। वह परम वीतरागी होता है। परम वीतरागी मुनि उग्र तप के माध्यम से भविष्य में उदय आने योग्य कर्म को गला देता है। उसी प्रकार मुनीश्वरों को नवीन आस्रव या बंध नहीं होता है। उस परम वीतरागी मुनीश्वरों का पाप एवं पुण्य स्वयमेव निष्फल होकर खिर जाते हैं और उनको नवीन कर्मास्रव बंध नहीं होता है। उन्हीं को परम निर्वाण की प्राप्ति होती है।

स्मरण (धारणा) हेतु करणीय

(देखा, सुना, पढ़ा हुआ आदि भी क्यों याद नहीं रहता?)

(चाल : आत्मशक्ति.....)

धारणा हेतु अवग्रह व ईहा अवाय भी चाहिए।
अवग्रह ईहा आवाय पूर्वक ही धारण संभव (होती) है।।

विषय-विषयी संबंध से, होता है अवग्रह पहले।
चक्षु आदि पाँचों इंद्रियों से, विषय ग्रहण/(अवग्रह) होता पहले।।

इसके बाद होती है 'ईहा' जिसे कहते (है) जानने की इच्छा/(जिज्ञासा)।
जानने की इच्छा होने के बाद निर्णय पूर्ण होता 'अवाय'।। (1)

इसके बिना न होता 'स्मरण' केवल देखने आदि से।
केवल सूँघना-चखना-पढ़ना से नहीं होता है स्मरण।।

अवग्रह से होता है केवल संबंध मतिज्ञान व 'ज्ञेयों' का।
पाँचों इंद्रिय व मन से उसके योग्य 'ज्ञेयों' का।। (2)

अवग्रह के अनंतर विशेष जानने की इच्छा होती है 'ईहा'।
इसे ही कहते है जिज्ञासा या शोध-बोध की इच्छा।।

इसके माध्यम से जो होता निर्णय उसे कहते है अवाय।
निर्णयपूर्वक ज्ञान से ही होता 'धारणा ज्ञान' या 'स्मरण'।। (3)

'स्मरण' हेतु ध्यानपूर्वक देखना-सुनना पढ़नादि चाहिए।
विशेष परिज्ञान हेतु जिज्ञासापूर्वक शोध-बोध चाहिए।।

चिंतन-मनन-अनुसंधान व समन्वय-प्रयोग से।
ज्ञान होता है सुनिर्णयपूर्वक 'स्मरण' अनुभव से।। (4)

इस हेतु और भी अंतरंग-बहिरंग होते कारण।
बुद्धि लब्धि/(क्षयोपशम) से लेकर शुद्ध सात्विक विचार व भोजन।।

प्राणायाम व योगासन प्राकृतिक वातावरण व भ्रमण।
दान-दया-परोपकार व महान् लक्ष्य सह सादा जीवन।। (5)

ज्ञानी साधु सज्जन से ज्ञानाभ्यास व सतत अध्ययन।
स्व-चिंतन व अनुभव से लेखन पठन व संभाषण।।

केवल परीक्षा हेतु न हो तोता रटंत समान ज्ञान।
'सूरी कनक' का अनुभव है स्मरण रहता है अनुभव ज्ञान।। (6)

चितरी, दिनांक 24.10.2017, रात्रि 10.50

कंप्यूटर से भी तेज दौड़ेगा दिमाग

आजकल के लाइफ स्टाइल में हमारी मेमोरी पॉवर इतनी कमजोर हो गई हैं कि हमको ये भी याद नहीं रहता कि हमने कल क्या खाया था या किस-किससे मिले थे। कुछ लोग तो मेमोरी लॉस के उपचार के लिए मल्टी विटामिंस कैप्सूल भी खाते हैं। आइये कुछ ऐसे उपाय जाने जिनसे हम दिमाग तेज करके अपनी याददाश्त बढ़ा सकते हैं।

मेमोरी शार्प करने के लिए यह आवश्यक है कि आप जो भी पढ़े उसकी दिमाग में एक तस्वीर बनाने की कोशिश करें। इसका फायदा ये होगा कि आप चीजों को ज्यादा लंबे समय तक याद रख पायेंगे। यदि आपको महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तारीख याद रखना है तो आप इसके लिए फ्लैश कार्ड पर उन्हें लिख सकते हैं। जब भी आपको आवश्यकता हो आप उसे फ्लैश कार्ड पर देख सकते हैं, इससे वह तारीखें आपको याद हो जायेंगी। आपको जो भी बात याद रखनी है उसे मन ही मन दोहराते रहें। आप चाहे तो उन बातों को लिखकर भी याद रख सकते हैं। एक शोध के मुताबिक कागज पर बनाये गये नोट्स से दिमाग तेज होता है, क्योंकि इसमें आँखें और दिमाग दोनों सक्रिय होते हैं। इन नोट्स को बनाते समय इसे बोलकर पढ़ते भी रहें। इसमें आपकी आँखें, दिमाग और कान तीनों की सक्रिय भूमिका रहती है। जब आप किसी चीज को जीवन के उदाहरणों से जोड़कर देखते है तो दिमाग के लिए उन चीजों को दोहराना आसान हो जाता है। हमारा दिमाग उन चीजों को आसानी से याद रख पाता है। आप चाहे तो अपनी पसंदीदा गाने की धुन पर उन चीजों को सेट करें, जिन्हें आप याद रखना चाहते हैं।

अपने दिमाग की शक्तियों को बढ़ायें

रिसर्च से साबित हुआ है कि मानव मस्तिष्क का विकास जीवनभर होता रहता है पर इसके इस्तेमाल के लिए माइंड पावर बढ़ानी होगी। सोचने में स्पष्टता, याददाश्त, सीखने की योग्यता, रचनात्मकता, समस्याएँ सुलझाने की क्षमता ये सब इसकी क्षमताएँ हैं। इन्हें बढ़ाने की कई तकनीकें हैं। आज इन दो से परिचय-

मैपिंग-किसी भी विषय पर सोचें। जैसे आपने गार्डनिंग का विषय लिया। इस शब्द को कागज पर लिखकर उससे जुड़े सारे शब्द सोचे और लिखते जाये। पेज भर डालें। दिमाग पर जोर डालकर शब्द सोचते जाये। इससे आपके दिमाग के दोनों हिस्से एक साथ काम करने पर मजबूर हो जायेंगे। यह गतिविधि उन दोनों हिस्सों के बीच कनेक्शन को साफ और तीव्र बनाये रखती है। जब एक ही समय दिमाग के दोनों हिस्से सक्रिय होते हैं तो विचार-शक्ति बढ़ जाती है और समस्याओं के समाधान अधिक आसानी से मिल जाते हैं। फिर कुछ बहुत अच्छे माइंड मैपिंग एप भी हैं, जिन्हें डाउनलोड करके आप प्रैक्टिस कर सकते हैं।

ऑब्जर्वेशन-लोगों को ऑब्जर्व करें। इसका मतलब है उनकी प्रतिक्रियाएँ, व्यवहार और देह की गतिविधियों को देखें। इसका एक हिस्सा बॉडी लैंग्वेज है पर लोगों का ऑब्जर्वेशन इससे आगे जाता है, क्योंकि तब लोगों का पूरा माइंडसेट पता चलता है। आपको एकदम भिन्न लोगों की सोच में समानताएँ दिख सकती हैं। हम कई बार रेलवे स्टेशन, किसी दफ्तर या कहीं इंतजार करते रहते हैं। तब हम लोगों को ऑब्जर्व कर सकते हैं। दूसरों के विचारों, उनकी भावनात्मक अवस्था के बारे में आपको इंट्यूटिव फिलिंग होने लगेगी। इमोशनल इंटेलिजेंस विकसित होगा। अजनबियों पर गौर करने से आपका मनोवैज्ञानिक कौशल बढ़ेगा।

दिमागी क्षमता बढ़ाना है? ये एक्सरसाइज कीजिये

ध्यान केंद्रित करने की क्षमता और कामकाजी याददाश्त को आजमाना चाहते हैं तो ये एक्सरसाइज करें। इससे दोनों गुण बढ़ते हैं, दैनिक जीवन के साथ कामकाज में भी जरूरी हैं। यह एक्सरसाइज जितनी दिखती है, उतनी

आसान नहीं है-

(1) हफ्ते के दिनों के नाम उलटे क्रम में बोलें। फिर अल्फाबेटिकल ऑर्डर में बोलें। (2) अपनी जन्म तारीख का मूल अंक निकालिये। इससे भी कठिन माइंड टीजर चाहते हैं? यही आप अपने बेस्ट फ्रेंड या जीवनसाथी के लिए कीजिये। (3) अपने पहले नाम के प्रत्येक अक्षर के लिए दो वस्तुओं के नाम लीजिये। पाँच वस्तुओं तक मशक्कत कीजियें हर बार अलग आइटम का नाम लीजिये। (4) अपने आसपास देखिये और दो मिनट के भीतर लाल रंग की पाँच ऐसी चीजें खोजे जो आपकी जेब में आ जाये और पाँच ऐसी नीली चीजें खोजे जो इतनी बड़ी हो कि जेब में न समायें। (5) महीनों के नाम अल्फाबेटिकल ऑर्डर में कहिये। आसान था? ठीक है इसे उलटे क्रम में कहिये। (6) अपने आस-पास की चीजों को देखे और जल्दी से उससे जुड़ी वस्तु की कल्पना कीजिये। जैसे पुलिसकर्मी दिखे तो आप क्या कल्पना कर सकते हैं? (7) अपने सामने की सड़क देखे और जल्दी से कल्पना में उसकी पूरी लंबाई में आने वाले चौराहे देखें। (8) घर में मौजूद पेन, पेंसिल, स्टेप्लर, जैसी बहुत-सी छोटी वस्तुओं का ढेर बनायें, उन्हें पाँच मिनट गौर से देखे, फिर मुँह उल्टी दिशा में फेरकर कागज पर सबके नाम लिखिये।

संदर्भ-

मतिज्ञान के दूसरे नाम

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्। (13)

मति Sensitive knowledge (connotes) the same thing as :

स्मृति (rememberance of a thing known before, but out of sight now) :

संज्ञा also called प्रत्यभिज्ञान recognition (rememberance of a thing known before when the thing itself or something similar or markedly dissimilar to it, is present to the senses now) :

चिन्ता Chinta or Tarka induction (reasoning or argument based upon observation. If a thing is put in fire, its temperature would rise).

अभिनिबोध Abhinibodh or Anumana. (Deduction, Reasoning by inference; e.g. any thing put in fire become sheated this thing is in Fire; therefore is must be heated.

मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध इत्यादि अन्य पदार्थ नहीं हैं अर्थात् मतिज्ञान के ही नामान्तर हैं।

मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम रूप अंतरंग निमित्त से उत्पन्न हुए उपयोग को विषय करने के कारण मतिज्ञान एक है तथापि कुछ विशेष कारणों से उसमें उपरोक्त भेद हो जाते हैं।

1. **मति**-''मननं मतिः'' जो मनन किया जाता है उसे मति कहते हैं। मन और इन्द्रिय से वर्तमान काल के पदार्थों का ज्ञान होना मति है।

2. **स्मृति**-''स्मरणं स्मृति'' स्मरण करना स्मृति है। पहले जाने हुए पदार्थ का वर्तमान में स्मरण आने को स्मृति कहते है।

3. **संज्ञा**-''सज्ञानं संज्ञा'' वर्तमान में किसी वस्तु को देखकर यह वही है इस प्रकार स्मरण और प्रत्यक्ष के जोड़ रूप ज्ञान को संज्ञा या प्रत्यभिज्ञान कहते हैं।

4. **चिन्ता**-किन्हीं दो पदार्थों के कार्य-कारण आदि सम्बन्ध के ज्ञान को चिन्ता कहते हैं। इसको तर्क भी कहते हैं। जैसे-अग्नि के बिना धूम नहीं होता है, आत्मा के बिना शरीर व्यापार, वचन व्यापार नहीं हो सकते हैं, पुद्गल के बिना स्पर्श, रस, गंध, वर्ण नहीं हो सकते है इस प्रकार कार्य कारण सम्बन्ध का विचार करना 'चिन्ता' है। संक्षिप्ततः व्याप्ति के ज्ञान को चिन्ता कहते हैं।

5. **अभिनिबोध**-एक प्रत्यक्ष पदार्थ को देखकर उससे सम्बन्ध रखने वाले अप्रत्यक्ष का बोध-ज्ञान होना अभिनिबोध (अनुमान) है। जैसे-पर्वत पर प्रत्यक्ष धूम को देखकर उससे सम्बन्ध रखने वाली अप्रत्यक्ष अग्नि का ज्ञान होना।

'इति' शब्द से प्रतिभा, बुद्धि, मेधा आदि को ग्रहण करना चाहिए। दिन या रात्रि में कारण के बिना ही जो स्वतः प्रतिभास हो जाता है वह प्रतिभा है। जैसे प्रातः मुझे इष्ट वस्तु की प्राप्ति होगी या कल मेरा कोई इष्ट सम्बन्धी आयेगा आदि।

अर्थग्रहण करने की शक्ति को 'बुद्धि' कहते हैं।

पाठग्रहण करने की शक्ति का नाम 'मेधा' है।।

कहा भी है-आगमाश्रितज्ञान 'मति' है। 'बुद्धि' तत्कालीन पदार्थ का साक्षात्कार करती है। 'प्रज्ञा' अतीत को तथा 'मेधा' त्रिकालवर्ती पदार्थों का परिज्ञान करती है। नवीन-नवीन उन्मेषशालिनी 'प्रतिभा' है।

मतिज्ञान की उत्पत्ति का कारण और स्वरूप

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्। (14)

(It is acquired by the help of the इन्द्रिय senses and अनिन्द्रिय i.e., mind.) वह मतिज्ञान इन्द्रिय और मन रूप निमित्त से होता है। मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम, वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम, नो इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम के साथ-साथ इन्द्रिय और मन के द्वारा जो ज्ञान होता है उसे 'मतिज्ञान' कहते है।

'इन्द्र' शब्द का व्युत्पत्तिलक्ष्य अर्थ है 'इन्दतीतिइन्द्रः' जो आज्ञा और ऐश्वर्य वाला है वह इन्द्र है। 'इन्द्र' शब्द का अर्थ आत्मा है। वह यद्यपि ज्ञस्वभाव है तो भी मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के रहते हुए स्वयं पदार्थों को जानने में असमर्थ है अतः उस पदार्थ के जानने में जो लिंग (निमित्त) होता है वह इन्द्र का लिंग इन्द्रिय कही जाती है। अथवा जो लीन अर्थात् गूढ़ पदार्थ का ज्ञान कराता है उसे लिंग कहते हैं। इसके अनुसार 'इन्द्रिय' शब्द का यह अर्थ हुआ कि, जो सूक्ष्म आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान कराने में लिंग अर्थात् कारण है उसे 'इन्द्रिय' कहते है, जैसे लोक में धूम, अग्नि का ज्ञान कराने में कारण होता है। इसी प्रकार ये स्पर्शनादिक करण कर्त्ता आत्मा के अभाव में नहीं हो सकते हैं अतः उनसे ज्ञाता का अस्तित्व पाया जाता है। अथवा इन्द्र शब्द नामकर्म का वाची है। अतः यह अर्थ हुआ कि, उससे रची गई इन्द्रिय है। वे इन्द्रियाँ स्पर्शनादिक है। अनीन्द्रिय, मन और अन्तःकरण ये एकार्थ वाची नाम हैं।

मन को नो इन्द्रिय या अनिन्द्रिय कहते हैं। यहाँ अनिन्द्रिय का अर्थ निषेधपरक नहीं है परन्तु किञ्चित् अर्थ में है। यथा ''ईषदर्थस्यनञ-प्रयोगात्'' नञका प्रयोग 'ईषद' अर्थ में किया है। ईषत् इन्द्रिय अनिन्द्रिय। यथा अनुदरा कन्या। इस प्रयोग में जो अनुदरा शब्द है उससे उदरका अभाव रूप अर्थ न लेकर ईषद् अर्थ लिया गया है

उसी प्रकार प्रकृत में जानना चाहिए।

ये इन्द्रियाँ निश्चित देश में स्थित पदार्थों का विषय करती हैं और कालान्तर में अवस्थित रहती हैं। किन्तु मन इन्द्रिय का लिंग होता हुआ भी प्रतिनियत देश में स्थित पदार्थ को विषय नहीं करता और कालान्तर में अवस्थित नहीं रहता।

इसे अन्तःकरण कहा जाता है। इसे गुण और दोषों के विचार और स्मरण करने आदि कार्यों में इन्द्रियों की अपेक्षा नहीं लेनी पड़ती तथा चक्षु आदि इन्द्रियों के समान इसकी बाहर उपलब्धि भी नहीं होती। इसलिए यह अनागत करण होने से अन्तःकरण कहलाता है। इसलिए अनिन्द्रिय में नञ का निषेध रूप अर्थ न लेकर 'ईषद्' अर्थ लिया गया हैं।

मतिज्ञान के भेद व स्मरण के उपाय

अवग्रहेहावायधारणाः। (15)

अवग्रह Avagraha or perception.

ईहा Conception.

आवाय Judgement.

धारणा Retention.

अवग्रह, ईहा, आवाय और धारणा ये मतिज्ञान के चार भेद है।

इस सूत्र में ज्ञान प्राप्ति के मनोवैज्ञानिक प्रणाली का वर्णन किया गया है। किसी भी विषय के धारणा रूपी ज्ञान के लिये किन-किन मनोवैज्ञानिक प्रणालियों से गुजरना पड़ता है उसका वर्णन किया गया है। विद्यार्थियों को इस सूत्र में प्रतिपादित मनोवैज्ञानिक प्रणाली से अध्ययन करना चाहिये जिससे उनकी धारणा शक्ति (स्मरण शक्ति) अधिक हो सकती है।

विषय और विषयी के सम्बन्ध के बाद होने वाले प्रथम ग्रहण को अवग्रह कहते हैं। विषय और विषयी का सन्निपात (सम्बन्ध) होने पर दर्शन होता है। उसके पश्चात् जो पदार्थ का ग्रहण होता है वह 'अवग्रह' कहलाता है। जैसे चक्षु इन्द्रिय के द्वारा 'यह शुक्ल रूप है' ऐसा ग्रहण करना अवग्रह है। अवग्रह के द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थों में उसके विषय में विशेष जानने की इच्छा ईहा कहलाती है। जैसे, 'जो

शुक्ल रूप देखा है वह क्या बकपंक्ति हैं?' इस प्रकार जानने की इच्छा 'ईहा' है। विशेष के निर्णय द्वारा जो यथार्थ ज्ञान होता है उसे 'अवाय' कहते है। जैसे-उत्पतन, निपतन और पंखविक्षेप आदि के द्वारा यह बकपंक्ति ही है ध्वजा नहीं है, ऐसा निश्चय होना अवाय है। जानी हुई वस्तु का जिस कारण कालान्तर में विस्मरण नहीं होता उसे 'धारणा' कहते है। जैसे-यह वही बकपंक्ति है जिसे प्रातःकाल मैंने देखा था, ऐसा जानना धारणा है। सूत्र में इन अवग्रहादिक का उपन्यास क्रम इनके उत्पत्ति क्रम की अपेक्षा किया है। तात्पर्य यह है कि, जिस क्रम से ये ज्ञान उत्पन्न होते हैं उसी क्रम से इनका सूत्र में निर्देश किया है।

गोम्मट्टसार जीवकाण्ड में कहा भी गया है-

अहिमुहणियमियबोहणमाभिणिबोहयमणिंदिइंदियजं।

अवगहईहावायाधारणगा होंतिपत्तेयं।। (306) (गोम्मट्टसार जीवकाण्ड)

इन्द्रिय और अनिन्द्रिय (मन) की सहायता से अभिमुख और नियमित पदार्थ को 'अभिमुख' कहते हैं। जैसे-चक्षु का रूप नियत है इस ही तरह जिस-जिस इन्द्रिय को जो-जो विषय निश्चित है उसको नियमित कहते है। इस तरह के पदार्थों का मन अथवा स्पर्शन आदिक पाँच इन्द्रियों की सहायता से जो ज्ञान होता है उसको 'आभिनिबोधक मतिज्ञान' कहते हैं। इस प्रकार मन और इन्द्रिय रूप सहकारी निमित्तभेद की अपेक्षा से मतिज्ञान के छह भेद हो जाते हैं। इसमें भी प्रत्येक के अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा ये चार-चार भेद हैं। प्रत्येक के चार-चार भेद होते हैं, इसलिए छह को चार से गुणा करने पर मतिज्ञान के चौबीस भेद हो जाते है।

विसयाणं विसइणं, संजोगाणंतरं हवे णियमा।

अवगहणाणं गहिदे, विसेसकंखा हवे ईहा।। (308)

पदार्थ और इन्द्रियों का योग्य क्षेत्र में अवस्थान रूप सम्बन्ध होने पर सामान्य अवलोकन या निर्विकल्प ग्रहण रूप दर्शन होता है और इसके अनन्तर विशेष आकार आदि को ग्रहण करने वाला अवग्रह ज्ञान होता है। इसके अनन्तर जिस पदार्थ को अवग्रह ने ग्रहण किया है उस ही के किसी विशेष अंश को ग्रहण करने वाला ईहा ज्ञान होता है।

ईहणकरणेण जदा, सुणिण्णओ होदि सो अवाओ दु।
कालंतरे वि णिण्णिदवत्थुसुमरणस्स कारणं तुरियं।। (309)

ईहा ज्ञान के अनन्तर वस्तु के विशेष चिह्नों को देखकर जो उसका विशेष निर्णय होता है उसको 'अवाय' कहते हैं। जैसे-भाषा, वेष विन्यास आदि को देखकर ''यह दाक्षिणात्य ही है'' इस तरह के निश्चय को अवाय कहते हैं। जिसके द्वारा निर्णित वस्तु का कालान्तर में भी विस्मरण न हो उसको धारणा ज्ञान कहते हैं।

विवश होते अज्ञानी-मोही

(सत्य से विपरीत अज्ञानी-मोही के भाव-व्यवहार-कथन आदि कर्म परतंत्र व लौकिक रूढ़ि परम्परा के आधीन)

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)

अनादिकालीन कर्म संस्कार व प्रचलित लौकिक रूढ़ि परंपरा से।
अधिकतर लोग होते संचालित अनजान होते सत्य-तथ्य से।।

भूख के कारण यथा खाना खाते प्यास के कारण पीते पानी।
भोगेच्छा के कारण भोग करते, होकर भी उस संबंधी अज्ञानी।। (1)

प्रबल वेग से जब हवा चलती, धूली उड़ती उससे हो संचालित।
तथाहि अज्ञानी-मोही भाव-व्यवहार/(कथन) करते होकर के परतंत्र।।

क्रोध-मान-माया-लोभ-काम वशतः तथाहि आहार-निद्रा-भय वशतः।
ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा आदि के वश से, काम/(भाव-कथन) करते हो विवशतः।। (2)

उक्त कारकों से जो होते है विवश, वे संचालित होते लौकिक रूढ़ि से।
दोनों से प्रेरित हो बेहोश होकर, भाव-व्यवहार/(कथन) करते अज्ञान से।।

लौकिक रूप में जो देखते-सुनते, वैसा ही सत्य को मानते।
अज्ञानी यथा आकाश को नीला मानते, अमूर्तिक आकाश न जानते।। (3)

शरीर को ही 'मैं' मानते भोग-उपभोग को ही सुख मानते।
लौकिक रीति-रिवाज-परंपरा व बोली को ही सही मानते।।

लौकिक पढ़ाई व नौकरी-व्यापार-शिल्प आदि करना ही कर्त्तव्य जानते।
विवाह करना परिवार चलाना आदि को ही जीवन का लक्ष्य मानते।। (4)

गतानुगतिक होते है लोग न लोग होते है पारमार्थिक।
प्रत्यक्ष में मारते गाय (गौ) को किंतु पूजन करते गोबर को।।

धर्म को भी रूढ़ि-परंपरा रूप से देखा-देखी रूप में जानते।
भेड़-भेड़िया चाल से काम करते, श्रद्धा-प्रज्ञा से धर्म नहीं जानते।। (5)

आत्मा का शुद्ध स्वरूप धर्म है या वस्तु स्वरूप होता है धर्म।
समता-शांति-पवित्रता धर्म से वे विपरीत मानते/(करते) धर्म।।

ऐसे परम धर्म के शब्दों से लेकर परिभाषा व न भाषा जानते।
जिससे धार्मिक ग्रंथ न समझते, तदनुकूल कथन भी नहीं समझते/(दोष न मानते)।। (6)

सच्चा-अच्छा जीवन न जीते केवल जीवन को ढोते रहते।
तोता जैसे बोलते रहते कोल्हू के बैल जैसे काम भी करते।।

ऐसे जीवों के हितार्थ भी महान् गुरु उपदेश करते।
उनके योग्य भाषा व पद्धति से उनका भी उपकार करते।। (7)

तीर्थंकर भी अठारह महाभाषा बोलते किन्तु क्षुद्र भाषा सात सौ बोलते।
महात्मा बुद्ध भी पाली में बोले म्लेच्छों को श्रमण म्लेच्छ भाषा बोलते।।

सप्त व्यसन पंच पाप त्याग कराते इससे धर्म का बीज बोते।
किसे तो इससे भी कम त्याग करा के उसे भी धर्म रूप बोलते।। (8)

किन्तु जो अभव्य व अभद्र होते उनसे साम्य भाव रखते।
उनको भी कष्ट वे नहीं देते ऐसा ही भाव-काम-कथन 'कनक' करते।। (9)

चितरी, दिनांक 29.10.2017, रात्रि 9.42

(यह कविता अन्य के संकीर्ण रूढ़िवादी भाव-व्यवहार-कथन से शिक्षा लेकर सृजित हुई।)

संदर्भ-

आत्मा है न मोक्ष सुख : सबसे बड़ा है सांसारिक सुख!

श्रुत-परिचित-अनुभूत : समस्त काम-भोग बंध कथा

(सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि काम-भोग बंध कहा)

आस्तिक हो या नास्तिक, कर्तावादी हो या अकर्तावादी, धार्मिक हो या अधार्मिक, देशी हो या विदेशी, कीट-पतंग-पशु-पक्षी हो या स्वर्ग के देवता, गृहस्थ हो या साधु चार्वाक दर्शन/सांसारिक सुख, भोग को प्रायोगिक जीवन में जीते हैं। भले वे किसी भी परंपरा, दिखावा, रीति-रिवाज, पूजा-पाठ, संत-ग्रंथ, पंथ-मत, महापुरुष, धर्म संस्थापक, धर्म प्रचारक, मूर्तिपूजक आदि के अनुयायी क्यों न हो। क्योंकि जीव का स्वभाव अनंत सुख स्वरूप होने से प्रत्येक जीव सुख चाहता है और दुःख से भयभीत होता है। सुख की उपलब्धि के लिए अनेक उपायों का शोध-बोध आविष्कार-प्रायोगिकरण अनादि अनंत काल से लेकर आधुनिक काल तक हो रहा है। अतएव ''**यतोऽभ्युदयानिःश्रेयससिद्धिस्सः धर्मः**'' अर्थात्-''जिससे यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होकर लौकिक/सांसारिक सुख एवं समस्त दुःखों की अत्यंत निवृत्ति स्वरूप स्वात्मोपलब्धि रूप मोक्ष की प्राप्ति हो सके उसे धर्म कहते हैं'' रूपी महान् सूत्र/सिद्धांत/प्रणाली का निर्माण हुआ। परन्तु यथार्थ विश्वास, विवेक, आचरण के बिना जीव अनादि काल से सांसारिक सुख स्वरूप इंद्रिय जनित काम-भोग, विषय-वासना रूप देह सुख को ही मान रहा हैं, जान रहा हैं, भोग रहा हैं और उसके लिए सतत प्रयत्नशील है।

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंध कहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलभो विहत्तस्स।। (4) समयसार

अनादि काल से जीव ने समस्त काम-भोग-बंध कथा को सुना, परिचित हुआ, अनुभव किया, अतएव यह सब काम-भोगादि सुलभ है, उसके प्रति अत्याधिक आकर्षण/लोलुपता/तृष्णा हैं इस कार्य में संसार के प्रत्येक जीव व केवल शिष्य/प्रशिक्षु/प्रशिक्षणाधीन है परन्तु दक्ष/कुशल/मास्टर/आचार्य है। अर्थात् स्वयं आचरण करता है और दूसरों को भी आचरित/प्रेरित/प्रशिक्षित करता है, इसीलिए तो निम्न श्रेणीय एककोशीय जीव से लेकर वनस्पति, कीट-पतंग, पशु-पक्षी, मनुष्य, स्वर्ग के

देव तक स्वेच्छा से स्व-प्रवृत्ति से सांसारिक सुख के लिए प्रवृत्त होते है।

एकेन्द्रिय जीव से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक अनंतानंत जीव केवल सांसारिक सुख ही को जानते हैं, मानते हैं, भोगते हैं। क्योंकि इनके मन नहीं होने के कारण वे सम्यग्दृष्टि नहीं बन सकते हैं जिसके कारण वे सम्यग्ज्ञानी तथा सम्यक् आचरण वाले नहीं बन सकते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव यथा-पशु-पक्षी, मनुष्य, नारकी, देव में तो मन होता है परन्तु वस्तु स्वरूप का यथार्थ विश्वास/श्रद्धान जिसको नहीं होता है वे भी उपर्युक्त जीव के समान ही सांसारिक सुख भोगी होते हैं। उनमें जो सम्यग्दृष्टि होते है वे श्रद्धा रूप से तो आत्मसुख को मानते है परन्तु आचरण रूप से वे भी सांसारिक सुख को भोगते हैं। जो सम्यग्दृष्टि के साथ-साथ अणुव्रती/सागार/पंचम गुणस्थानवर्ती होते हैं वे भी श्रद्धा के साथ-साथ कुछ अंश में सांसारिक सुख को त्याग करते हैं तो कुछ अंश में सांसारिक सुख को भोगते है।

अनाद्यविद्यादोषोत्थचतुः संज्ञाज्वरातुराः।
शश्वत्स्वज्ञानविमुखाः सागारा विषयोन्मुखाः।। (2)

अनादिकालीन अविद्या रूपी दोषों से उत्पन्न होने वाली, चारों संज्ञा रूपी ज्वर से पीड़ित, निरंतर आत्म ज्ञान से विमुख, विषयों के सन्मुख गृहस्थ होते हैं।

जिस प्रकार वात, पित्त और कफ की विषमता से साध्य प्राकृत, असाध्य प्राकृत, साध्य वैकृत, असाध्य वैकृत के भेद से चार प्रकार के ज्वर उत्पन्न होते हैं। उन ज्वरों से पीड़ित होने के कारण मनुष्य हिताहित के विवेक से शून्य हो जाते हैं और अपथ्यसेवी बन जाते हैं, उसी प्रकार अनित्य पदार्थों में नित्य, अपवित्र पदार्थों में पवित्र, दुःखों को सुख, हेय पदार्थों को उपादेय अपने से पृथक् स्त्री, पुत्र, मित्रादिक बाह्य पदार्थों को अपना मानना, यही एक अनादिकालीन अविद्या है। उस अविद्यारूपी वात, पित्त, कफ की विषमता से उत्पन्न होने वाली आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा और परिग्रह संज्ञारूपी ज्वर से पीड़ित होकर यह प्राणी हिताहित के विवेक से शून्य होकर अपथ्यसेवी बन रहा है अतः अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं रहा।

अनाद्यविद्यानुस्यूतां ग्रंथसंज्ञामपासितुम्।
अपारयन्तः सागाराः प्रायो विषयमूर्च्छिताः।। (3) सा.धर्मा.

अनादिकालीन अज्ञान के कारण परंपरा से आने वाली परिग्रह संज्ञा को छोड़ने

के लिए असमर्थ प्रायः करके गृहस्थ होते हैं।

जिस प्रकार बीज से अंकुर और अंकुर से बीज यह परंपरा अनादि काल से चली आ रही है, उसी प्रकार अनादिकालीन अज्ञान भाव से परिग्रहादि संज्ञा से अज्ञान भाव (अर्थात् द्रव्य कर्म से भाव कर्म और भाव कर्म से द्रव्य कर्म) इस प्रकार अनादि (जिसका प्रारंभ नहीं है) अविद्या से उत्पन्न हुई ग्रंथ संज्ञा अर्थात् परिग्रह में यह मेरा है इस प्रकार के परिणामों के छोड़ने में असमर्थ होकर प्रायः गृहस्थ स्त्री-पुत्रादिक में मैं इनका भोक्ता हूँ, मैं इनका स्वामी हूँ, यह मेरी योग्य वस्तु है इस प्रकार के ममकार अहंकार रूप विकल्प जाल की परतंत्र से वशीभूत होकर विषयों में मूर्च्छित हो जाता है। इस श्लोक में प्रायः यह शब्द दिया है इससे यह सूचित होता है कि प्रायः सम्यग्दृष्टि भी चारित्र मोहनीय के वशीभूत होकर विषयों में मूर्च्छित हो जाते हैं परन्तु कोई विरले सम्यग्दृष्टि जन्मान्तर में किये हुए रत्नत्रय के अभ्यास से भरत चक्रवर्ती आदि के समान चक्रवर्ती इन्द्रपद आदि का अनुभव करते हुए भी ''**असतीनाथोपभोगन्याय**'' से तत्त्वज्ञान देशसंयम आदि की तत्परता होने से नहीं भोगने वाले के समान है। इस विशेषता को बताने के लिए प्रायः शब्द दिया गया है। सप्तम प्रतिमा से सांसारिक सुख का त्याग अधिक होता जाता है जिससे आत्मिक सुख उस अंश में अधिक होता जाता है। यह हानि एवं वृद्धि क्रम आगे अंश-अंशी भाव से बढ़ता जाता है। क्षुल्लक, ऐलक, आर्यिका/साध्वी तक पंचम गुणस्थान/आध्यात्मिक सोपान की उत्कृष्ट स्थिति है। इस गुणस्थान की इस अवस्था में स्थूल सांसारिक विषय-भोग स्वरूप सुख भोग तो नहीं होता है परन्तु प्रत्याख्यान, संज्वलन तथा नो-कषाय के सद्भाव/उदय के कारण सूक्ष्म सांसारिक सुख का भी सद्भाव है। सर्व सांसारिक भौतिक परिग्रह/साधन त्याग रूप षष्ठम गुणस्थानवर्ती साधु/अनगार को पूर्ववर्ती उत्कृष्ट पंचम गुणस्थान से भी अधिक आध्यात्मिक सुख का अनुभव होता है जिससे उसे सांसारिक सुख का वेदन और भी सूक्ष्म हो जाता है। क्योंकि-

यथा यथा समायाति, संवित्तौ तत्वमुत्तमम्।
तथा तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।। इष्टो.

जैसे-जैसे विशुद्ध आत्मस्वरूप के अभिमुख योगीजन गमन करते है अर्थात् आत्मस्वरूप में लीन होकर उसकी अनुभूति करते है वैसे-वैसे सुलभ भी रमणीय

इंद्रिय जनित भोग में बुद्धि उत्पन्न नहीं होती है। महासुख की उपलब्धि होने पर अल्पसुख के कारण का अनादर लोक में भी दिखाई देता है।

यथा यथा न रोचन्ते, विषया सुलभा अपि।
तथा तथा समायाति, संवित्तौ तत्वमुत्तमम्।। इष्टो.

विषय विरक्ति ही योगी की स्व-आत्म-संवित्ति की सूचना देने वाली है, उसके अभाव से अर्थात् विषय विरक्ति के अभाव से आत्म संवित्ति भी नहीं हो सकती है। विषय विरक्ति से आत्म-संवित्ति भी वृद्धि को प्राप्त हो जाती है।

निशामयति निश्शेषमिन्द्रजालोपमं जगत्।
स्पृहयत्यात्मलाभाय, गत्वान्यत्रानुतप्यते।। इष्टो.

जो आत्म-संवित्ति का रसिक/ध्याता है वह संपूर्ण चराचर बाह्य वस्तु को उपेक्षा रूप से देखता है। उसे हेय, उपादेय, ग्रहणीय एवं त्यजनीय का ज्ञान होने के कारण इंद्रजालियाँ (जादूगर) के द्वारा प्रदर्शित सर्प व हार के समान समस्त सांसारिक वस्तु प्रतिभाषित होती है इसलिए वह संसार को इंद्रजाल के समान अवास्तविक मानकर चिदानंद स्वरूप स्व-आत्म संवित्ति को चाहता है तथापित स्व-आत्मा से अतिरिक्त किसी वस्तु में स्व-चित्त की प्रवृत्ति पूर्व संस्कार वश हो जाती है, तब वह पश्चचाताप करता है। वह दुःखी होकर सोचता है कि हाय! मेरे से ये अनात्म कार्य कैसे हो गया।

परन्तु संज्वलन एवं नो कषाय के यथायोग्य तीव्र, मध्यम, मंदता के कारण तदनुकूल सांसारिक सुख का सद्भाव है परन्तु उसकी मंदता के कारण एवं आध्यात्मिक सुख की तीव्रता के कारण वह सुख अकिंचित्कर हो जाता है। यथा-

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहारबहिः स्थिते।
जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः।।

देहादि से निवृत्त होकर जो स्व-आत्मा में ही लीन होकर प्रवृत्ति निवृत्ति रूप व्यवहार से दूर होकर ध्यान करता है ऐसे योगी को स्व-आत्मा ध्यान से एक अनिर्वचनीय परम आनंद उत्पन्न होता है जो आनंद अन्य में असंभव है।

परन्तु यह वर्णन यथार्थ से जो अंतरंग में चतुर्थ, पंचम, षष्टम् गुणस्थानवर्ती यथाक्रम से जैनी, श्रावक/सागार, साधु/अनगार है उनके लिए न कि केवल बाह्य से

जो जैनी, श्रावक, साधु है उनके लिए है। वे बाह्य आचरण वाले पूर्णतः सांसारिक सुख के भोगी ही होते हैं। क्योंकि मोही/मिथ्यादृष्टि जो कुछ सांसारिक काम या धार्मिक काम करता है वह सब भोग निमित्त है न कि कर्मक्षय निमित्त है (मिच्छादिट्ठि जं कुणइ तं सव्व भोग णिमित्तं ण हु कम्मक्खय णिमित्तं)।

धर्मः शब्द मात्रेण बहुशः प्राणिऽधमाः।
अधर्ममेव सेवन्ते विचार जड चेतसाः।। पद्मपु.

अधिकांशतः विचारहीन अधम प्राणी धर्म शब्द को लेकर अधर्म ही सेवन करते हैं। आदि शंकराचार्य कहते हैं कि-

जटिलो मुण्डी लुंचित केशः कषायाम्बरः बहुकृतवेषः।
पश्यन्नपि न च पश्यति मूढः उदर निमित्तं बहुकृत वेषः।।

जटा बढ़ाने वाले, सिर मुंडन करने वाले, कषायाम्बरादि अनेक धार्मिक वेषों को धारण करने वाले मूढ़ लोग जो कि आत्मधर्म से रहित होने के कारण आत्मा के सत्य धर्म को नहीं देखते हैं वे मूर्ख केवल उदर पोषण के लिए अनेक प्रकार बाह्य वेश को धारण करते हैं। वे केवल स्वार्थ सिद्धि के लिए यश, प्रतिष्ठा, मान-सम्मान, अर्थ शोषण के लिए बाह्य वेश बनाकर धर्मोपदेश करते हैं परन्तु अंतरंग में बगुला भक्त होते हैं। जैसे कि बक पक्षी बाह्य में शुक्ल होता है एवं जलाशय में एक पैर पर खड़ा रहकर ध्यानी के समान ध्यान करता है परन्तु जब जलाशय के ऊपर मछली आती है तब मछली को ॐ स्वाहा करता है। इसी प्रकार कुछ पाखंडी साधु बाह्य से धार्मिक वेश-भूषा धारण करते हैं और भोले प्राणियों को अपने चंगुल में फँसाने के लिए अनेक धार्मिक मायाजाल फैलाते है और संयोग मिलने पर बक पक्षी के समान धन, जन, जीवन तक का अपहरण कर लेते हैं। किसी नीतिकार ने कहा भी है-

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।
धर्मे स्वयमनुष्ठानं कस्याचित् महात्मनः।।

दूसरों को सदाचार का, धर्म का उपदेश देना सरल है किन्तु उस उपदेशानुसार स्वयं आचरण करने वाले जगत् में कोई विरले ही सज्जन है। कुछ जिह्वा लालची, स्वार्थी, कामूक व्यक्ति धर्म के ठेकेदार बनकर धर्म के नाम पर मद्य-माँस आदि का प्रचार-प्रसार करते हैं।

मद्य मांस च मीन मुद्रा मैथुनमैव च।
एते पंच मकारास्युर्मोक्ष दाहि युगे-युगे।। कालीतंत्र

मद्य-माँस-मछली-मुद्रा (पूरी, कचोरी, बडे) और मैथुन ये पाँच मकार युग-युग में मोक्ष देने वाले हैं।

पीत्वा-पीत्वा पुनः पीत्वा यावत् पतति भूतले।
उत्थाय च पुनः पीत्वा भूयो जन्म न विद्यते।।

जो सुरा को बार-बार पीता है जिसके कारण वह जमीन में गिर जाता है पुनः खड़े होकर पीता है इस प्रकार व्यक्ति संसार में बार-बार जन्म ग्रहण नहीं करता है।

निष्कर्ष रूप से मेरा (आ. कनकनंदी) जो विभिन्न विधा के लाखों व्यक्तियों का दीर्घ अनुभव है उसके आधार पर मैं इस समीकरण पर पहुँचा हूँ कि सामान्य प्राणी से लेकर हर संप्रदाय के अनेक साधु-संत तक पंचेन्द्रियों के भोगोपभोग, चार संज्ञा (आहार, भय, मैथुन, परिग्रह), चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), पाँच पाप (हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह) रूपी सांसारिक सुख/आवेश/विवशता/परतंत्रता से प्रभावित होकर ही सोचते हैं, जानते हैं, मानते हैं, बोलते हैं, करते हैं किन्तु सत्य, समता, आध्यात्मिकता, मोक्ष सुख, व्यापकता, उदारता, सहिष्णुता, पवित्रता, वीतरागता आदि का प्रायः अभाव रहता है।

अज्ञानी मोही V/S आध्यात्मिकजन

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)

अज्ञानी मोही के भाव-व्यवहार, होते आत्मा से विपरीत।
आध्यात्मिकजन के भाव-व्यवहार, होते है उनसे विपरीत।।

अज्ञानी मोही स्व-शरीर को ही, मानते हैं मेरा स्वरूप।
आध्यात्मिकजन इनसे भिन्न, स्व-आत्मा को मानते मेरा स्वरूप।। (1)

अज्ञानी मोही इंद्रिय-मन परे, नहीं जानते है स्व-स्वरूप।
आध्यात्मिक जन इंद्रिय-मन परे ही, जानते हैं स्व-स्वरूप।।

अज्ञानी मोही इंद्रिय-मन-देह-सुख, को मानते सुख।

आध्यात्मिकजन इससे परे, आत्मिक सुख को ही मानते सुख।। (2)

अज्ञानी मोही सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि-डिग्री में करते 'अहंकार-ममकार'।
आध्यात्मिकजन इससे परे, स्व-आध्यात्मिक वैभव में रखते सरोकार।।

अज्ञानी मोही शिक्षा से व्यापार-राजनीति-धर्म को करते विकृत।
आध्यात्मिकजन हर क्षेत्र में/(को) करते हैं, विकृत को भी संस्कारित।। (3)

अज्ञानी मोही ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा, से आवेशित होकर करते भाव-व्यवहार।
आध्यात्मिकजन ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा से, अप्रभावी होकर करते भाव व्यवहार।।

अज्ञानी मोही पक्षपातपूर्ण करते है, अप्रमाणिक भाव-व्यवहार।
आध्यात्मिकजन सत्यग्राही होकर, करते है प्रमाणिक भाव-व्यवहार।। (4)

अज्ञानी मोही शत्रुता-मित्रतापूर्ण, करते है सदा भाव-व्यवहार।
आध्यात्मिकजन मैत्री-प्रमोद-कारुण्य, माध्यस्थपूर्ण करते भाव-व्यवहार।।

अज्ञानी मोही आध्यात्मिकजनों से भी, करते है अयोग्य भाव-व्यवहार।
आध्यात्मिकजन अज्ञानी मोही से भी, नहीं करते अयोग्य भाव-व्यवहार।। (5)

अज्ञानी मोही दीन-हीन व, होते है अहंकार से सहित।
आध्यात्मिकजन इससे परे होते है, 'स्वाभिमान' 'सोऽहं' 'अहं' सहित।।

ऐसे ही होते (है) अनंत भेद/(अंतर), अज्ञानी मोही व आध्यात्मिकजनों में।
दोनों में भेद जानने हेतु, संक्षेप में वर्णन किया कनकनंदी ने।। (6)

चितरी, दिनांक 30.10.2017, रात्रि 10.05

संदर्भ-

मोही स्वभाव को प्राप्त नहीं करता है

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते नहि।
मत्तः पुमान् पदार्थनां यथा मदनकोद्रवैः।। (7)

Deluded by infatuation the knowing being is unable to acquire adequate knowledge of the nature of things, in the same way as a person who has lost his wits in conegaence of eating intoxicating is unable to know thow them properly!

शिष्य पुनः प्रश्न करता है-

यदि ये संसार के सुख और दुःख वासना मात्र ही है तब उसका यथार्थ परिज्ञान क्यों नहीं होता है? शिष्य का प्रश्न ये है-यदि वस्तुतः संसार के सुख एवं दुःख अवास्तविक हैं तब उसका परिज्ञान संसार के लोगों को अवास्तविक रूप में क्यों नहीं होता है? आचार्य शिष्य को प्रबोधन देते हैं-

''**धातुनाम् अनेक अर्थत्वात्**'' अर्थात् धातुओं के अनेक अर्थ होने के कारण यहाँ लभ धातु का अर्थ ज्ञान है। जब ज्ञान मोहनीय कर्म के विपाक से आविर्भूत हो जाता है तब वह ज्ञान वस्तु स्वरूप को यथार्थ प्रकाशन करने में असमर्थ हो जाता है। शुद्ध स्वरूप से ज्ञान कथंचित् आत्मा से अभिन्न है और वस्तु स्वरूप को यथार्थ से जानने के लिए पूर्ण समर्थ है परन्तु कर्म परवशता के कारण ज्ञान में/आत्मा में विकार उत्पन्न हो जाता है। कहा भी है-जिस प्रकार मल से आबद्ध मणि एक प्रकार का नहीं होता है, एक प्रकार का प्रकाश नहीं देता है उसी प्रकार कर्म से आबद्ध आत्मा भी एक प्रकार का नहीं होता है और एक प्रकार का नहीं जानता है।

प्रश्न-अमूर्तिक आत्मा किस प्रकार मूर्तिक कर्म से आविर्भूत होता है, आबद्ध होता है?

उत्तर-शुद्ध आत्मा अमूर्तिक होते हुए भी संसारी जीव अभी अमूर्तिक नहीं है कर्म से आबद्ध संसारी जीव व्यवहारनय की अपेक्षा मूर्तिक है।

नशे को पैदा करने वाले कोद्रव-कोदों धान्य को खाकर जिसे नशा पैदा हो गया है, ऐसा पुरुष घट, पट आदि पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान सकता उसी प्रकार कर्म बद्ध आत्मा पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान पाता है। अर्थात् आत्मा व उसका ज्ञान गुण यद्यपि अमूर्त है, फिर भी मूर्तिमान कोद्रवादि धान्यों से मिलकर वह बिगड़ जाता है। उसी प्रकार अमूर्त आत्मा मूर्तिमान कर्मों के द्वारा अभिभूत हो जाता है और उसके गुण भी दब सकते हैं।

समीक्षा-सत्य से विपरीत मान्यता श्रद्धा/प्रतीति विश्वास रूप परिणाम व भावों को मोह/मिथ्यात्व कहते हैं। सत्य का पूर्ण साक्षात्कार सर्वज्ञ वीतरागी देव करते हैं। सर्वज्ञ भगवान् ने दिव्य ध्वनि मूलक उस परम सत्य का प्रमाण, नय, निक्षेपों के द्वारा प्रतिपादन किया है, उनके द्वारा प्रतिपादित सत्य अर्थात् जो उनके द्वारा कहे हुए द्रव्य,

तत्त्व पदार्थों में विश्वास नहीं करता, श्रद्धा नहीं करता वह मिथ्यादृष्टि है क्योंकि उसकी श्रद्धारूप दृष्टि विपरीत होने के कारण वह पदार्थ को भी विपरीत रूप श्रद्धान करता है। सिद्धांत चक्रवर्ती नेमीचन्द्र आचार्य गोम्मट्टसार में कहते हैं-

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं च ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइः।। (18)

मिथ्यादृष्टि जीव 'उपदिष्ट' अर्थात् अर्हंत आदि के द्वारा कहे गये, 'प्रवचन' अर्थात् आप्त आगम और पदार्थ ये तीन, इनका श्रद्धान नहीं करता है। प्रवचन अर्थात् जिनका वचन प्रकृष्ट है ऐसे आप्त, प्रकृष्ट का वचन प्रवचन अर्थात् परमागम। प्रकृष्ट रूप से जो कहा जाता है वह प्रवचन अर्थात् पदार्थ। इन निरूक्तियों से प्रवचन शब्द से आप्त, आगम और पदार्थ तीनों कहे जाते है तथा वह मिथ्यादृष्टि असद्भाव अर्थात् मिथ्या रूप प्रवचन यानी आप्त आगम पदार्थ का 'उपदिष्ट' अर्थात् आप्ताभासों के द्वारा कथित अथवा अकथित का भी श्रद्धान करता है।

मदि सुदणाण बलेण दु सच्छंदं बोल्लेदे जिणुवदिट्ठं।
जो सो होदि कुदिट्ठी ण होदि जिण मग्ग लग्गरवो।।(2) (रयणसार)

जो मतिज्ञान श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त हुए मतिज्ञान-श्रुतज्ञान के कारण उद्धत होकर स्वयं के मनमाने ज्ञान के द्वारा अपने मत अर्थात् पक्ष को लेकर स्वच्छंद होकर कपोल कल्पित मत का प्रतिपादन करते हैं, जिनवाणी को नहीं मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जिनधर्म से बाह्य हैं। यदि जिनागम को दिखाने पर यथार्थ वस्तु का श्रद्धान करने लगता है और पूर्व कल्पित मत-पक्ष का त्याग करता है तब वह सम्यग्दृष्टि बन जाता है अन्यथा मिथ्यादृष्टि रहता है।

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीय दंसणो होदि।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो।। (17)

उदय में आये मिथ्यात्व का वेदन अर्थात् अनुभवन करने वाला जीव विपरीत दर्शन अर्थात् अतत्त्व श्रद्धा से युक्त होता है। वह न केवल अतत्त्व की ही श्रद्धा करता है अपितु अनेकान्तात्मक, धर्म, वस्तु स्वभाव, मोक्ष के कारणभूत रत्नत्रयात्मक धर्म को भी पसंद नहीं करता।

दृष्टांत-पित्त ज्वर से ग्रस्त व्यक्ति मीठे-दूध रसादि को पसंद नहीं करता, उसी

तरह मिथ्यादृष्टि को धर्म नहीं रुचता है।

इंदिय विसय सुहादिसु मूढमदी रमदि न लहदि तत्त्वं।
बहुदुक्खमिदि ण चिंतदि सो चेव हवदि बहिरप्पा।। (129) (रयणसार)

जो मूढ़मति इन्द्रिय जनित सुख में रमण करता हुआ उसको सुख मानता है, बहु दुःखप्रद नहीं मानता है, वह आत्म तत्त्व को प्राप्त नहीं कर सकता है, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है।

पूर्व संचित मिथ्यात्व कर्म के उदय से जो स्वयंमेव विपरीत भाव होता है उसे निसर्ग व अगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं, जो कुगुरु के उपदेश से विपरीत भाव होते है उसे अधिगमज व गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्व के कारण जीव अवस्तु में वस्तुभाव, अधर्म में धर्मभाव, कुगुरु में गुरुभाव, कुशास्त्र में सुशास्त्र भाव को धारण करता है। बहिरात्मा केवल शरीर पोषण करता है, अतीन्द्रिय आत्मोत्थ सुख से बहिर्मुख होकर विषय सुख में ही लीन रहता है। बाह्य-भौतिक हानि वृद्धि में अपनी हानि-वृद्धि मानकर सुखी-दुःखी होता है। सामान्य से मिथ्यात्व एक प्रकार होते हुए भी विशेष अपेक्षा अर्थात् द्रव्य-भाव से दो प्रकार, एकांत, विपरीत, संशय, विनय, अज्ञान की अपेक्षा पाँच प्रकार भी होता है। इसमें सांख्य चार्वाक मत मिलाने से 7 प्रकार का मिथ्यात्व होता है। विशेष रूप से क्रियावादियों के 180, अक्रियावादियों के 84, अज्ञानवादी के 67 और वैयनिकवादियों के 32 इस प्रकार मिथ्यावादियों के 363 भेद होते हैं।

बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सवदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत्।। (4)

भावार्थ-आत्मा की तीन अवस्थाएँ होती हैं-बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा। उनमें से जब तक प्रत्येक संसारी जीव की अचेतन पुद्गल-पिंडरूप शरीरादि विनाशीक पदार्थों में आत्म-बुद्धि रहती है, या आत्मा जब तक मिथ्यात्व-अवस्था में रहता है तब तक वह '**बहिरात्मा**' कहलाता है। शरीरादि में आत्म बुद्धि का त्याग एवं मिथ्यात्व का विनाश होने पर जब आत्मा सम्यग्दृष्टि हो जाता है तब उसे '**अंतरात्मा**' कहते हैं। उसके तीन भेद हैं-उत्तम अंतरात्मा, मध्यम अंतरात्मा और जघन्य अंतरात्मा। अंतरंग-बहिरंग-परिग्रह का त्याग करने वाले, विषय-कषायों को

जीतने वाले और शुद्ध उपयोग में लीन होने वाले तत्त्वज्ञानी योगीश्वर '**उत्तम अंतरात्मा**' कहलाते हैं, देशव्रत का पालन करने वाले गृहस्थ तथा छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनि '**मध्यम अंतरात्मा**' कहे जाते हैं और तत्त्वश्रद्धा के साथ व्रतों को न रखने वाले अविरत सम्यग्दृष्टि जीव '**जघन्य अंतरात्मा**' रूप से निर्दिष्ट हैं।

आत्म गुणों के घातक ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय नामक चार घातिया कर्मों का नाश करके आत्मा की अनंत चतुष्टय रूप शक्तियों को पूर्ण विकसित करने वाले 'परमात्मा' कहलाते हैं अथवा आत्मा की परम विशुद्ध अवस्था को '**परमात्मा**' कहते हैं। यदि कोई कहे कि अभव्यों में तो एक बहिरात्मावस्था ही संभव है, फिर सर्व प्राणियों में आत्मा के तीन भेद कैसे बन सकते हैं? यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अभव्य जीवों में भी अंतरात्मावस्था और परमात्मावस्था शक्ति रूप से जरूर है, परन्तु उक्त दोनों अवस्थाओं के व्यक्त होने की उनमें योग्यता नहीं है। यदि ऐसा न माना जाय तो अभव्यों में केवल ज्ञानावरणीय कर्म का बंध व्यर्थ ठहरेगा। इसलिये चाहे निकट भव्य हो, दूरान्दूर भव्य हो अथवा अभव्य हो, सबमें तीन प्रकार का आत्मा मौजूद है। सर्वज्ञ में भी भूतप्रज्ञापन नय की अपेक्षा घृत-घट के समान बहिरात्मावस्था और अंतरात्मावस्था सिद्ध है।

आत्मा की इन तीन अवस्थाओं में से जिनकी परद्रव्य में आत्मबुद्धि रूप बहिरात्मावस्था हो रही है उनको प्रथम ही सम्यक्त्व प्राप्त कर उस विपरीताभिनिवेशमय बहिरात्मावस्था को छोड़ना चाहिए और मोक्षमार्ग की साधक अंतरात्मावस्था में स्थिर होकर आत्मा की स्वाभाविक वीतरागमयी परमात्मावस्था को व्यक्त करने का उपाय करना चाहिए।

बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।
चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्माऽतिनिर्मलः।। (5)

भावार्थ-मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत तत्त्वों का जैसा स्वरूप जिनेन्द्र देव ने बताया है उसको वैसा न मानने वाला बहिरात्मा अथवा मिथ्यादृष्टि कहलाता है। दर्शन मोह के उदय से जीव में अजीव की कल्पना और अजीव में जीव की कल्पना होती है, दुखदाई राग द्वेषादिक विभाव भावों को सुखदाई समझ लिया जाता है, आत्मा के हितकारी ज्ञान वैराग्यादि पदार्थों को अहितकारी जानकर उनमें अरूचि अथवा द्वेषरूप

प्रवृत्ति होती है और कर्मबंध के शुभाशुभ फलों में राग, द्वेष होने से उन्हें अच्छे-बुरे मान लिया जाता है। साथ ही इच्छाएँ बलवती होती जाती हैं, विषयों की चाहरूप दावानल में जीव दिन-रात जलता रहता है। इसीलिये आत्मा शक्ति को खो देता है और आकुलता रहित मोक्ष सुख के खोजने अथवा प्राप्त करने का कोई प्रयत्न नहीं करता। इस प्रकार जाति तत्त्व और पर्याय तत्त्वों का यथार्थ परिज्ञान न रखने वाला **जीव मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है**। चैतन्य लक्षण वाला जीव है, इससे विपरीत लक्षण वाला अजीव है, आत्मा का स्वभाव ज्ञाता-द्रष्टा है, अमूर्तिक है और ये शरीरादिक परद्रव्य हैं, पुद्गल के पिंड हैं, विनाशीक हैं, जड़ हैं, मेरे नहीं हैं और न मैं इनका हूँ, ऐसा भेदविज्ञान करने वाला सम्यग्दृष्टि '**अंतरात्मा**' कहलाता है। अत्यंत विशुद्ध आत्मा को '**परमात्मा**' कहते हैं, परमात्मा के दो भेद हैं-एक सकल परमात्मा और निष्कल परमात्मा। जो चार घातिया कर्ममल से रहित होकर अनंत ज्ञानादि चतुष्टय रूप अंतरंग लक्ष्मी और समवसरणादि रूप बाह्य लक्ष्मी को प्राप्त हुए हैं उन सर्वज्ञ वीतराग परम हितोपदेशी आत्माओं को '**सकल परमात्मा**' या '**अरहंत**' कहते हैं और जिन्होंने संपूर्ण कर्ममलों का नाश कर दिया है, जो लोक के अग्र भाग में स्थित हैं, निजानंद निर्भर-निजरस का पान किया करते हैं तथा अनंत काल तक आत्मोत्थ स्वाधीन निराकुल सुख का अनुभव करते हैं उन कृत-कृत्यों को '**निष्कलपरमात्मा**' या '**सिद्ध**' कहते हैं।

निर्मलः केवलः शुद्धो विविक्तः प्रभुरव्ययः।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः।। (6)

भावार्थ-आत्मा अनंत गुणों का पिंड है। परमात्मा में उन सब गुणों के पूर्ण विकसित होने से परमात्मा के उन गुणों की अपेक्षा अनंत नाम हैं। इसी से परमात्मा को अजर, अमर, अक्षय, अरोग, अभय, अविकार, अज, अकलंक, अशंक, निरंजन, सर्वज्ञ, वीतराग, परम ज्योति, बुद्ध, आनंदकंद, शास्ता और विधाता जैसे नामों से भी उल्लेखित किया जाता है।

मोही पर को अपनाता

वपुर्गृहं धनं दाराःपुत्रा मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्यस्वभावानि मूढः स्वानि प्रपद्यते।। (8)

All the objects, the body, the house, the wealth, the wife, the son, the friend, the enemy and the like are quite different in their nature from the soul; the foolish an, however, looks upon then as his own!

उपर्युक्त विषय को अभी वहाँ विस्तार से आचार्यश्री बता रहे हैं।

स्व-पर विवेकहीन मूढ़ मोही जीव शरीर, घर, धन, स्त्री, पुत्र, मित्र यहाँ तक कि शत्रु को भी जो कि सर्वथा स्वयं से भिन्न है उसे भी अपना मान लेता है। सर्वथा सर्व प्रकार से अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप से जो स्व-स्वरूप से अन्य है, भिन्न है ऐसे परद्रव्य को भी दृढ़तर मोह से आविष्ट जीव अपना मान लेता है। शरीर जो कि अचेतन परमाणुओं से (रक्त, माँस, हड्डी, चर्म आदि) निर्मित होने के कारण अचेतन स्वरूप है उसे भी अपना मान लेता है। इसी प्रकार घर, धन, स्पष्ट रूप से भौतिक जड़ वस्तु से निर्मित है उसे भी अपना मान लेता है। भार्या, पुत्र, मित्र तथा शत्रु जो कि शारीरिक दृष्टि से तथा आत्मिक दृष्टि से भी भिन्न है उसे भी अपना मान लेता है। यहाँ पर शरीर आदि को हितकारी मानता है और शत्रु आदि को मेरा अहितकारी मानकर उसमें भी मेरा शत्रु है ऐसा अपनापन रखता है।

समीक्षा-शुद्ध निश्चयनय से स्वशुद्ध द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ही स्व-चतुष्टय है और इसमें भिन्न समस्त चेतन-अचेतन द्रव्य, द्रव्य-क्षेत्र, काल भाव से भिन्न है, पर है तथापि मोही जीव मोह के कारण पर आत्म स्वरूप को भी स्व-स्वरूप मान लेता है, जिससे उसकी स्वार्थ सिद्धि होती हो, इन्द्रिय जनित सुख मिलता हो उसको अपना हितकारी मानकर अपना मानता है और राग करता है तथा जिससे स्वार्थ सिद्धि नहीं होती है, इन्द्रिय जनित सुख नहीं मिलता हो उसको अपकारी मानकर उससे द्वेष करता है। एक के प्रति रागात्मक संबंध है तो दूसरे के प्रति द्वेषात्मक संबंध है। मिथ्यादृष्टि जीव दर्शन मोहनीय तथा चारित्र मोहनीय कर्म के कारण श्रद्धा रूप से तथा आचरण रूप से शरीर आदि पर वस्तु में मोह करता है परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव श्रद्धा रूप से परद्रव्य को पर मानते हुए भी जब तक चारित्र मोहनीय कर्म का उदय रहता है तब तक वह पर द्रव्य को व्यवहार रूप से, आचरण रूप से अपना मानता है।

हे! जिनवर तेरा परम आदर्श

-आचार्यश्री कनकनंदी जी

(चाल : हे जिनवर तेरी....., सायोनारा.....)

हे! जिनवर तेरा परम आदर्श...शुद्ध-बुद्ध-आनंद स्वरूप...
राग-द्वेष-मोह-विकार रहित...सत्य-समता व शांति सहित...(ध्रुव)...

ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा से रहित...सरल-सहजता-पावन सहित...
दीन-हीन-अहंकार रहित...'स्वाभिमान' 'सोऽहं' अहंभाव सहित...

हटाग्रह-दूराग्रह-मिथ्याग्रह रिक्त...सनग्र सत्याग्रह-आत्मश्रद्धा युक्त...
अज्ञान-कुज्ञान-संकीर्णता रिक्त...उदार-निर्मल-अनंत ज्ञान युक्त...

परनिंदा-अपमान व हानि रहित...मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ युक्त...
हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रह रिक्त...अहिंसा-सत्य-अचौर्य-शील-असंग्रह युक्त...

ख्याति-पूजा-लाभ-कामना रिक्त...निस्पृह-निराडम्बर-वीतराग युक्त...
संकल्प-विकल्प-संक्लेश रिक्त...निराकुल-निर्विकार-आनंद युक्त...

आकर्षण-विकर्षण-द्वंद्व रहित...निश्चल-निच्छल-साम्य सहित...
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा रहित...स्वावलंबन-स्वतंत्रता-संपूर्ण युक्त...

अपना-पराया-भेदभाव रहित...स्व-पर विश्व मंगल भावना युक्त...
मिथ्या-रूढ़ि-परंपरा-ढोंग रहित...निश्चय-व्यवहार साध्य-साधना युक्त...

फैशन-व्यसन-अष्टमद रहित...सादा जीवन उच्च विचार सहित...
अन्याय-अत्याचार-भ्रष्टाचार रिक्त...न्याय-नीति व सदाचार युक्त...

शोषण-मिलावट-जमाखोरी रिक्त...न्याय से उपार्जित धन से युक्त...
भोग-उपभोग में संयम युक्त...दान-दया-सेवा-परोपकार सहित...

लौकिक से परे भी अलौकिक युक्त...अभ्युदय परे निःश्रेयस युक्त...
तन-मन-इंद्रिय दुःखों से परे...अक्षय-ज्ञानानंद भरीत सारे...

अज्ञानी-मोही न जाने तेरे आदर्श...तव आदर्श से विपरीत भाव-व्यवहार...
जिससे दुःख पाते वे अपार...तव आदर्श सभी माने 'कनक' विचार...

चितरी, दिनांक 31.10.2017, रात्रि 9.07

जिनवर के आदर्श अपनाने से मुझे प्राप्त अनुभव व लाभ

-आचार्यश्री कनकनंदी जी

(चाल : हे! जिनवर....., सायोनारा.....)

हे! जिनवर तेरा पावन संदेश/(आदर्श)...अनुभव में आ रहे सत्य सिद्धांत...
श्रद्धा-प्रज्ञा-चर्या के द्वारा...प्रयोग से मिले आत्मिक आनंद...(ध्रुव)...

मोक्षमार्ग जो आपने कहा...हर क्षेत्र में सत्य ही पाया...
आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र द्वारा... हर क्षेत्र में मिलती सफलता...

क्रोध-मान-माया-लोभ-त्याग से...अशांति-चिंता-चंचलता जाती...
समता-शांति-स्थिरता आती...श्रद्धा-प्रज्ञा में वृद्धि/(शुद्धि) होती...

ख्याति-पूजा व लाभ त्याग से...संकल्प-विकल्प-संक्लेश नशे...
दीन-हीन व अहंकार नशे...'स्वाभिमान' 'सोऽहं' 'अहं' भाव जगे...

आत्म विश्लेषण व आत्म सुधार से...दोष दूर होते सुगुण बढ़ते...
परनिंदा-अपमान-वैरत्व नशे...मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ बढ़े...

स्वकर्त्ता-धर्त्ता स्वयं बनने से...पर कर्तृत्व व वर्चस्व घटते...
स्वावलंबन अनुशासन बढ़े...पर-प्रपंच द्वंद्वादि घटते...

सामाजिक लंद-फंद त्यागते...धन-जन-मान समस्या घटे...
ध्यान-अध्ययन शोध-बोध बढ़े...अध्यापन-लेखन-प्रचार बढ़े...

संकीर्ण धार्मिक कट्टर रूढ़ि से...दूर होने से सत्य जिज्ञासा बढ़े...
उदार-पावन-भाव-व्यवहार होते...स्व-पर-विश्व मंगल भाव जगते...

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा त्याग से...स्वतंत्र-मौलिक भाव-काम होते...
समय-शक्ति का न होता अपव्यय...सर्वांगीण विकास होता प्रचुर...

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार...शक्ति अनुसार तप-त्याग से...
संक्लेश-रोग आदि नहीं सताते...आत्मविशुद्धि-आत्मशक्ति बढ़ती...

इससे हर कार्य होते सरल-सहज...इससे प्रभावित होते अन्य जन...
भाव से प्रभावित हो करते सेवा-दान...जिससे साधना मेरी होती उत्तम...

अनुभव से बढ़ती श्रद्धा व प्रज्ञा...जिससे बढ़ती स्थिरता-निर्मलता...
जिससे प्रभावना बढ़ती जाती...'कनक' की निस्पृहता बढ़ती जाती...

चितरी, दिनांक 01.11.2017, रात्रि 8.43
(यह कविता नितिन (सीपुर), भूपेश, दीपेश (चितरी) के कारण बनी।)

अभी के मानव उन्नतशील भी नहीं है

(गुरु प्रतीक्षालय में ज्ञान-विज्ञान-सम्मान की बहार)

-आ. कनकनंदी

वाग्वर अञ्चल के सांस्कृतिक ग्राम चितरी के आदिनाथ जिन चैत्यालय/गुरु प्रतीक्षालय में चातुर्मास व प्रवासरत निस्पृही संत प्रवर वैज्ञानिक श्रमणाचार्यश्री कनकनंदी जी गुरुवर ससंघ की निश्रा में ज्ञान-विज्ञान-साहित्य-गुणीजनों का सम्मान आदि प्रभावनापूर्वक गतिमान हैं। इस श्रृंखला में आगे आचार्यश्री द्वारा आशीष प्राप्त संस्थान द्वय व अखिल भारतीय जैन एकता मञ्च संस्थान, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान मेवाड़ रत्न आदि उपाधियों सह सम्मान समारोह विशाल स्तर पर प्रभावनापूर्वक करने हेतु एकता मञ्च के कार्यकर्त्ता उत्साहित है एवं आचार्य श्रीसंघ का आगामी चातुर्मास पुनश्च हल्दीघाटी में कराने हेतु अनेक बार अनुरोध कर रहे हैं।

आचार्यश्री के अंतर्राष्ट्रीय प्रभावक वैज्ञानिक शिष्यों द्वारा आचार्यश्री से ज्ञान-विज्ञान-आध्यात्म आदि के संदर्भ में चर्चा-वार्ता हुई जिसे श्रवण कर आगन्तुक विद्वत्जनों ने विशेष आनंदानुभूति करते हुए अपने-अपने विचार व अनुभव व्यक्त किये। गुरुदेव के शिष्यों में डॉ. एन.एल. कछारा जो कि अमेरिका व ब्रिटेन की यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर रहे है, ऐसे ही अमेरिका के आक्लोहोमा यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर रहे डॉ. पी.एम. अग्रवाल जो भौतिक विज्ञानी होते हुए भी आध्यात्म प्रेमी है। कृषि वैज्ञानिक डॉ. एस.एल. गोदावत, उदयपुर, रसायनशास्त्र प्रवक्ता डॉ. प्रभात कुमार जैन, भौतिकशास्त्र प्रवक्ता डॉ. सुशीलचन्द्र जी जैन आदि ने श्रीगुरु से विभिन्न विषयों पर चर्चा की। गुरुदेव ने प्रति-प्रश्नात्मक पद्धति से अनेक विषयों का समाधान किया। गुरुदेव की स्व-सृजित गूढ़ रहस्यमयी अनेको श्रेष्ठ कविताओं के माध्यम से आगन्तुक वैज्ञानिक शिष्यों को आचार्यश्री ने अनेकान्त-स्याद्वाद-न्याय-शिक्षा-बिगबैंग

थ्योरी-कार्य=-कारण सिद्धांत-आध्यात्म आदि विषयों का प्रभावकारी बोध कराते हुए कहा कि देश-विदेश में चलने वाली संगोष्ठी आदि में निष्पक्षता व निर्भीकता से सत्य-तथ्य उद्घाटित कर ज्ञान प्रभावना करने हेतु प्रेरित किया। आचार्यश्री ने आधुनिक विदेशी वैज्ञानिकों की सरलता विनम्र सत्यग्राहिता आदि गुणों की सराहना करते हुए उपस्थित शिष्य भक्तों को प्रगतिशील होने हेतु प्रोत्साहित किया। वागड़ अञ्चल के हिन्दू भक्तों ने सूचना दी कि आगामी 14 नवम्बर, 2017 को जयपुर से संत श्री भगवानसिंह जी आचार्यश्री के दर्शनार्थ पधार रहे हैं व विविध विषयों पर चर्चा करेंगे।

शुभभावना सह-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(मेरे अनुभव) स्व-अज्ञान व दोष परिज्ञान से विकास

(मेरे उत्तम गुणों को गलत मानने वालों के भाव परिवर्तन से बनते परम भक्त-शिष्य-दाता)

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)

स्व-अज्ञान के परिज्ञान से होता ज्ञान विकास,
स्व-दोष के परिज्ञान से होता गुण विकास।
प्रकाश से यथा तम नशता ताप से नशे शीत,
तथाहि ज्ञानी व गुणी बनने हेतु स्व को करो संशोधित।। (1)

हित प्राप्ति व अहित परिहार होना ही सुज्ञान,
अन्यथा वह नहीं होता सुज्ञान होता है वह कुज्ञान।
स्व-पर प्रकाशी होता है दीपक तथाहि होता सुज्ञान,
अन्यथा वह होता है कुज्ञान मदमस्त सम ज्ञान।। (2)

मेंरे कुछ अनुभवों को कर रहा हूँ मैं वर्णन,
स्व-पर हित कर रहा हूँ मैं यहाँ वर्णन।
अन्यत्र भी शिक्षा लेने हेतु किया हूँ अधिक वर्णन,
बिन जानने ते दोष गुणनों को कैसे त्यजीये-गहीये।। (3)

अनेक लोग मेरी नहीं समझ पाते श्रेष्ठ-क्लिष्ट भाषा,

धर्म-दर्शन व विज्ञान-गणित सहित भाषा।
समास-संधि-उपसर्ग-प्रत्यय-तत्सम शब्द,
शुद्ध उच्चारण युक्त, आगमनिष्ठ ज्येष्ठ भाषा।। (4)

नय प्रमाण व अनेकांत युक्त, अनुभव युक्त आध्यात्मिक,
स्वाभिमान युक्त दीन-दंभ रिक्त 'सोऽहं' 'अहं' संयुक्त।
ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि रहित ज्ञान-वैराग्य संयुक्त,
नहीं समझ पाते हैं मेरी सहचर्य युक्त भाषा।। (5)

व्यवहार व आध्यात्मिक दृष्टि से उत्तम पुरुष एक वचन,
संस्कृत में 'अहं' होता है प्रचलित हिन्दी में 'मैं' होता।
तथापि अधिकतर हिन्दी भाषी 'मैं' के स्थान में बोलते 'हम',
अनुभवपूर्ण आध्यात्मिक कथन में (भी) 'मैं' शब्द को मानते दंभ।। (6)

इसलिए वे मेरे 'मैं' प्रयोग को गलत समझ लेते,
किन्तु 'मैं' का अर्थ 'आत्मा' समझाने से वे प्रभावित होते।
ऐसा ही जब मेरी भाषा के बारे में होता सही ज्ञान,
स्वभाषा की कमी समझते मेरी भाषा को मानते उच्चतम।। (7)

गुण-गुणी व गुरु-शिष्यों की करता हूँ मैं प्रशंसा,
अध्ययन-अध्यापन-आगम ज्ञान की जब करूँ प्रशंसा।
इसे भी अधिकांश लोग समझ लेते है 'अहंकार',
जब ज्ञान होता यह तो 'विनय' तप करते मेरी प्रशंसा।। (8)

ज्ञान प्रचार हेतु गुरु आज्ञा पालनार्थे करता हूँ ग्रंथ रचना,
देश-विदेशों के जैन-जैनेतर स्वेच्छा से करते प्रकाशन।
इसे भी कुछ लोग गलत माने किन्तु जब समझाया,
स्व-गलती वे माने प्रायश्चित्त हेतु स्वेच्छा से बने ज्ञान दाता।। (9)

अन्य के दोष जानने पर भी दोषी की भी न करूँ निन्दा,
इसे भी कुछ मेरे दोष मानते, समझाने पर त्यागते परनिंदा।

ख्याति-पूजा-लाभ (प्रसिद्धि) व भीड़ (व) धन से रहा हूँ मैं निस्पृह,
इसे भी अधिक जन गलत मानते सही ज्ञान से बढ़ती श्रद्धा।। (10)

इन सब कारणों से जैन-अजैनों में बढ़ रही मेरे प्रति श्रद्धा,
स्व-भावना से प्रेरित होकर, करते दान से लेकर सेवा।

आहार-औषधि-ज्ञान-उपकरणों का करते वे दान,
चातुर्मास प्रवास हेतु करते वे बार-बार निवेदन।। (11)

इससे मुझे और भी अधिक मिलती शिक्षा व प्रेरणा,
पर्वोक्त सभी मेरे गुणों को, और भी बढ़ाने की भावना।

इस हेतु मैं व संघस्थ साधु-साध्वी भी साधनारत,
आत्मविशुद्धि बढ़ाने हेतु 'कनकनंदी' साधनारत।। (12)

चितरी, दिनांक 08.11.2017, रात्रि 11.44

(मेरे अनेक आचार्य-साधु-साध्वी तथा गृहस्थ भक्त-शिष्यों के कारण यह कविता बनी।)

एकांत (जंगल-ग्राम) में मेरे मौन रहने के कारण

एकांत में रहकर आत्मविशुद्धि की मेरी भावना क्यों!?

-आचार्यश्री कनकनंदी जी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू एकांत निवास करऽऽऽ
निस्पृह निराडम्बर मौन-समता से...आत्मा को पावन करऽऽऽ...(ध्रुव)...

तुझे न चाहिए धन-जन-मान...प्रसिद्धि व भौतिक निर्माणऽऽऽ
पर को प्रभावित करना (व) पर प्रतिस्पर्धा...वर्चस्व व धार्मिक मिथ्याचारऽऽऽ
तेरा लक्ष्य तो शुद्ध-बुद्ध-आनंदऽऽऽ...जिया।।...(1)...

भीड़ में होती है भेड़-भेड़िया चाल...अंधानुकरण व वर्चस्वकरऽऽऽ
स्वयं को बड़ा जताने व बताने हेतु...होता नवकोटि से भाव-व्यवहारऽऽऽ
भीड़तंत्र को तू न स्वीकार करऽऽऽ...जिया।।...(2)...

तीर्थंकर मुनि भी ऐसा ही करते...एकांत-मौन में करते साधनाऽऽऽ
चौसठ ऋद्धि व चार ज्ञानधारी होते...तो भी न करते प्रवचन (बाह्य) प्रभावनाऽऽऽ
सर्वज्ञ बनने हेतु करते साधनाऽऽऽ...जिया।।...(3)...

इनके सम अभी नहीं पूर्णतः संभव...शक्ति के अनुसार करो साधनाऽऽऽ
इच्छा-दबाव व आदेश रहित...समता से करो आत्मसाधनाऽऽऽ
द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावनुसार साधनाऽऽऽ...जिया।।...(4)...

तेरा उद्धार (तो) तू अभी तक न कर सकता...कैसे करेगा तू पर उद्धारऽऽऽ
आत्महित को तू पहले सही करो...परहित करो इसके अनंतरऽऽऽ
स्व-पर-प्रकाशी तू बन/(स्व-पर प्रकाशित तू कर)ऽऽऽ...जिया।।...(5)...

स्व-सुधार बिन पर उपकार भी...न होता है उत्तम प्रकारऽऽऽ
तेरा पतन तू कभी (भी) न कर...बुझा हुआ दीप न बने तमहरऽऽऽ
प्रज्ज्वलित दीप से स्वतः (होता) तमहरऽऽऽ...जिया।।...(6)...

अधिकतर जन होते मन्यमाना ज्ञानी...स्वयं को ही मानते श्रेष्ठ-ज्येष्ठऽऽऽ
हितोपदेश भी न करते श्रवण-ग्रहण...सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि में लीनऽऽऽ
फैशन-व्यसन भोग में लीन/(अस्त-व्यस्त व संत्रस्त जीवन)ऽऽऽ...जिया।।...(7)...

(आत्म) उपकार को भी अपकार भी मानते...करते निंदा-अपमान-विरोधऽऽऽ
और भी अधिक वे पापी बनते...पाप करने हेतु न बनो निमित्तऽऽऽ
तेरा तो स्व-पर विश्व कल्याण भावऽऽऽ...जिया।।...(8)...

संकीर्ण-कट्टर-रूढ़ि-परंपराधीन...ख्याति-पूजा-लाभ के आधीनऽऽऽ
भेड़-भेड़ियाचाल से चाहते वर्चस्व...समता-शांति-शुचिता शून्यऽऽऽ
न करेंगे तेरा उपदेश ग्रहण...'कनक' अतः तू करो आत्मकल्याणऽऽऽ...जिया।।...(9)...

चितरी, दिनांक 09.11.2017, रात्रि 8.20

धीमा जहर है दूषित हवा

प्रदूषित हवा में साँस लेने को हम सब मजबूर हैं, क्या हैं इसके दुष्प्रभाव और क्या हो सकते हैं बचाव...

स्माँग हर साल डराता है-जाड़े के मौसम में तापमान कम होने से हवा भी सघन हो जाती है। हवा का बहाव कम रहने और नमी के कारण, वातावरण के दूषित कण इसमें घुल जाते हैं। धूल और धुआँ मिलकर स्माँग बनाते हैं। यह भारी होने के कारण वातावरण में नीचे तैरता रहता है, इसलिये यह ज्यादा घातक है, लेकिन अब तो साल के बारह महीने वायु प्रदूषण अपने चरम पर होता है। इसी का परिणाम है कि भारतीयों की औसत उम्र 3-4 साल कम हो गई है। मेडिकल जनरल लान्सेट के अनुसार साल 2015 में देश में पाँच लाख से ज्यादा लोगों की मौत वायु प्रदूषण के कारण हुई।

समय से पहले पैदा हो रहे बच्चे-प्रदूषित हवा का सबसे ज्यादा असर गर्भवती स्त्रियों पर पड़ता है इसका दुष्प्रभाव जन्म लेने वाली संतान के स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। वायु प्रदूषण का थोड़े वक्त का भी कुप्रभाव दीर्घकालिक असर डाल सकता है। अगर माँ लगातार दूषित वायु में रहने को मजबूर है, तो समय पूर्व जन्म संबंधी जटिलताएँ हो सकती हैं और गर्भस्थ शिशु का विकास प्रभावित हो सकता है। भ्रूण को ऑक्सीजन माँ से मिलती है और अगर वह खराब हवा में साँस ले रही है, तो अजन्मे बच्चे के लिए जोखिम बढ़ जाता है। ऐसे बच्चों को बाद में अस्थमा की शिकायत हो सकती है। इन बच्चों के फेफड़े विकसित नहीं हो पाते। श्वास लेने में दिक्कत के अलावा उनका दिमाग भी विकसित नहीं हो पाता। साथ ही विटामिन डी और कैल्शियम अवशोषित करने की क्षमता पर भी असर पड़ता है। प्रीमेच्योर शिशुओं के अधिकतर अंग जन्म के समय बन तो जाते हैं, लेकिन इनका संपूर्ण विकास जन्म के बाद ही होता है।

प्रतिरक्षा तंत्र पर पड़ता है असर-प्रदूषण के बीच जन्म लेने वाले नवजात शिशुओं के प्रतिरक्षा तंत्र पर भी दीर्घकालिक असर पड़ता है। फेफड़ों संबंधी समस्याओं के अलावा रोग-प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। साथ ही मानसिक विकास में भी व्यवधान उत्पन्न होता है। समयपूर्व जन्मे बच्चों की देखभाल में कंगारू तकनीक बहुत काम आती है। जन्म के कई दिनों बाद तक बच्चे को उसकी माँ के शरीर के संपर्क में रखा जाता है। इससे समय से पूर्व जन्म लेने वाले बच्चों में होने वाली कई प्रकार की बीमारियों का खतरा टाला जा सकता है। बच्चों के देखभाल की इस विधि को कंगारू

केयर कहते हैं। कंगारू की तरह अपने बच्चे को अपनी त्वचा से लगाकर रखने की वजह से ही इसे यह नाम मिला है।

क्या रखें बचाव-प्रदूषण से बचने के लिए निजी स्तर पर बहुत बड़े प्रयास नहीं किए जा सकते। फिर भी वाहनों का कम से कम इस्तेमाल करें, कचरा आदि न जलायें। जाड़े के मौसम में सुबह-शाम सैर के लिए न जायें। बाहर निकलते समय नाक-मुँह ढंककर चलें। इसके लिए अच्छे फिल्टर वाले मास्क का इस्तेमाल करें। घर के अंदर हवा शुद्ध रखने के लिए एयर प्युरीफायर अच्छा विकल्प है, लेकिन उन पर भी बहुत भरोसा नहीं किया जा सकता। यह हवा में मौजूद पार्टिकुलेट मैटर को तो नियंत्रित करते हैं, पर हानिकारक रसायनों के लिए उतने कारगार नहीं है। पौधरोपण करे और घर के अंदर वायु में मौजूद हानिकारक तत्वों से अवशोषित करने वाले पौधे लगायें।

संदर्भ-

ध्यान-योग्य, योग्यता एवं परिस्थिति

अभवच्चितविक्षेपः एकान्ते तत्वसंस्थितः।

अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्वं निजात्मनः।। (36)

He in whose mind no distrubances occur and who is established in the knowledge of the self-such an ascetic should engage himself diligently in the contemplation of his soul, in a lonely place.

यहाँ शिष्य प्रश्न करता है-हे गुरुदेव! अभ्यास क्यों करना चाहिए? अर्थात् शिष्य की जिज्ञासा यह है कि अभ्यास का प्रयोग उपाय क्या है? बार-बार सुप्रसिद्ध स्थान, नियम आदि में प्रवृत्त होना अभ्यास है। इस संवित्ति रूप जिज्ञासात्मक शंका का समाधान आचार्यश्री शिष्य के बोध के लिए करते हैं।

संयमी-योगी को आलस्य निद्रादि को निरसन (जय) करके योग्य शून्य गृहादि में स्वात्मा का अभ्यास करना चाहिए। बाल्य मनुष्यादि रहित एकांत स्थान में तथा अंतरंग राग-द्वेषादि रहित एकांत-भाव से योगी को निजात्मा का ध्यान करना चाहिए। क्योंकि दोनों प्रकार के एकांत से रहित अवस्था में स्थित होने पर विक्षोभ उत्पन्न होता

है जिससे आत्म-ध्यान नहीं हो पाता है।

समीक्षा-अनादिकाल से यह जीव स्व-स्वरूप से बर्हिमुख होकर इन्द्रियाँ एवं मन के माध्यम से स्व-शक्ति का विघटन, बिखराव, ह्रास एवं क्षय कर रहा है। इसको ही बाह्य प्रवृत्ति, कुध्यान, अपध्यान, आर्तध्यान, रौद्रध्यान, संसारवर्धिनीध्यान कहते हैं। बाह्य से निवृत्ति होकर स्व में रमण रूप प्रक्रिया को ही सुध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान, योग, लीनता, समाधि आदि से अभिहित करते हैं।

इच्छा निरोधः ध्यानं:, इच्छा का सम्यक् रूप से निरोध करना ध्यान है। उमास्वामी आचार्यश्री ने मोक्षशास्त्र में कहा भी है-

'**एकाग्र चिन्ता निरोधोध्यानं**' चित्त को अन्य विकल्पों से हटाकर एक ही विषय में लगाने को ध्यान कहते हैं। महर्षि पतंजलि ने भी ध्यान का लक्षण कहते हुए पतंजलि योग दर्शन के प्रथम चरण में ही कहा है-

''योगश्चित्तवृत्ति निरोधः''

चित्त की वृत्तियों का जो निरोध है वह योग कहा जाता है। गीता में श्री कृष्ण ने कहा है-समत्व योग उच्यते (2.48) बुद्धि की समता या समत्व को ही योग (ध्यान) कहते हैं अथवा ''**योगः कर्मसु कौशलम्**'' (2.50) अर्थात् शुभाशुभ से मुक्त होकर कर्म करने की कुशलता को योग कहते है।

उपरोक्त सिद्धांत से यह सिद्ध होता है कि मन (बुद्धि, चित्त) की प्रवृत्ति अन्य-अन्य विषय से हटकर एक विषय में स्थिर भाव से केन्द्रीभूत हो जाना, लीन हो जाना, स्थिर हो जाना ही ध्यान है। अतएव ध्याता को ध्यान करने के लिए जो अनिवार्य तथा प्रथम एवं प्रधान नियम है उसका वर्णन आचार्य पूज्यपाद स्वामी समाधि तंत्र में निम्न प्रकार कहे हैं-

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते।

यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते।। (95)

मनुष्य की बुद्धि में जो बात दृढ़ता से बैठ जाती है उसको उसी विषय का श्रद्धान या रूचि विश्वास हो जाता है और जहाँ रूचि पैदा हो जाती है, उसी विषय में सोते-जागते तथा पागलपन या मूर्छित दशा में भी उसका मन रमा रहता है।

आत्मदृष्टा पुरुष की बुद्धि में आत्मा समाया हुआ होता है। इस कारण सब दशा

में उसका मन अपने आत्मा में ही लगा रहता है। बहिरात्मा की बुद्धि अपने शरीर की ओर लगी रहती है, अतः अपने शरीर को ही अपने सर्वस्व (आत्मा) की श्रद्धा से देखा करता है, इसी कारण सोते-जागते आदि सभी अवस्थाओं में उसका मन शरीर में ही लीन रहा करता है।

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्त्तते।

यस्मान्निवर्त्तते श्रद्धा कुतश्चित्तस्य तल्लयः।। (96) (समाधि तंत्र)

मनुष्य की बुद्धि में जो बात ठीक नहीं समाती उस बात में उसको श्रद्धा रूचि नहीं होती और जिस विषय की श्रद्धा नहीं होती है उस विषय में उसका मन भी लीन नहीं होता। तदनुसार अंतरात्मा की बुद्धि में अपनी आत्मा समायी रहती है। अतः शरीर में उसकी रूचि नहीं होती इसी कारण से वह आत्मा में लीन रहता है, शरीर में उसकी रूचि नहीं होती। इसके विपरीत बहिरात्मा की समझ में शरीर के सिवाय आत्मा और कुछ नहीं है। अतः उसकी श्रद्धा आत्मा में नहीं होती। इसी कारण उसका मन भी आत्मा में लीन नहीं होता। यह जीव अनादिकाल से संसार शरीर भोग, उपभोग इन्द्रिय विषय के राग-रंग में रचा-पचा अनुभव किया सुना है। इसलिये वह विषय अनुभूत होने के कारण स्व-स्वरूप सबसे अधिक निकटवर्ती होने पर भी मन की प्रवृत्ति स्वयंमेव सहज रूप से विषयों की ओर हो जाती है। परन्तु इससे विपरीत स्व-स्वरूप का भान अनुभव नहीं होने के कारण स्व-स्वरूप सबसे अधिक निकटवर्ती होने पर भी मन की प्रवृत्ति स्व में सरलता से नहीं होती है। इसलिये बाह्य द्रव्यों से चित्त को हटाकर स्व में स्थिर करने के लिए स्वयं का मनन-चिंतन परिज्ञान सतत करना चाहिए। पूज्यपाद स्वामी ने समाधि तंत्र में कहा है-

तदबृयात्तत्परान्पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।

येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्।। (52)

आत्मा श्रद्धालु को वह आध्यात्मिक चर्चा करनी चाहिए, वह आत्मा सम्बन्धी ही बातें अन्य विद्वानों से पूछनी चाहिए। उसी आध्यात्मिक विषय की चाह रखनी चाहिए। उसी आध्यात्मिक विषय में सदा तत्पर, तैयार या उत्सुक रहना चाहिए। जिससे अपनी आत्मा का अज्ञान भाव छोड़कर ज्ञान भाव प्राप्त हो।

गीता में कर्मयोगी नारायण श्री कृष्ण ने भी ध्यान के विषय में वर्णन करते हुए

कहा है-

अविद्या, राग-द्वेष इन्द्रिय विषय में रमायमान चित्त सर्वदा चंचल एवं क्षुभित रहता है इसलिये मन को स्थिर करना शीघ्र सहज साध्य नहीं है। मन को स्थिर करने के लिए जब श्री कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं तब अर्जुन श्री कृष्ण को निम्न प्रकार अपना भाव प्रगट करते हैं-

चंच्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।। (34) अध्याय 6

हे कृष्ण यह मन चंचल, हठीला बलवान और 'दृढ़' है। वायु के समान अर्थात् हवा को गठरी में बाँधने के समान इसका निग्रह करना मुझे अत्यंत दुष्कर दिखता है।

श्री कृष्ण अर्जुन की वास्तविक परिस्थिति एवं कठिनाइयों को अनुभव करके निम्न प्रकार संबोधन करते हैं-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते।। (35)
असंयतात्मना योगो दुष्प्रावृत इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतंता शक्याऽवाप्तुमुपायतः।। (36)

है महाबाहु अर्जुन! इसमें संदहे नहीं, कि मन चंचल है और उसका निग्रह करना कठिन है, परन्तु है कौन्तेय! अभ्यास और वैराग्य से वह स्वाधीन किया जा सकता है। मेरे मत में जिसका अन्तःकरण काबू में नहीं, उसको (इस साम्यबुद्धि रूप) योग का प्राप्त होना कठिन है, किन्तु अन्तःकरण को काबू में रखकर प्रयत्न करते रहने पर, उपाय से (इस योग का) प्राप्त होना संभव है।

जैसे जल स्वभावतः तरल एवं निम्नगामी है उसी प्रकार मन भी निम्नगामी है। मन की प्रवृत्ति विषय, कषाय में, राग-द्वेष में, राग-रंग में होना सहज-सरल है। जैसे जल को घन या ऊर्ध्वगामी बनाना श्रम साध्य एवं समय साध्य है, उसी प्रकार मन को निर्मल एवं स्थिर करना श्रम साध्य एवं समय साध्य है। जब जल तरल रहता है तब जल स्वाभाविक रूप से अधोगमन करता है परन्तु जब घन तुषार रूप परिणमन करता है तब जल अधोगमन नहीं करता है। उसी प्रकार मन, ज्ञान, वैराग्य, संयम,

मनन-चिंतन, अनुप्रेक्षा अभ्यास के बल से दृढ़ घनीभूत हो जाता है तब मन अधोगामी (विषय कषायों की ओर प्रवृत्ति करना) चल (अस्थिर, क्षुभित, अशांत, व्यथित) नहीं रहता है। मन को निर्मल, स्थिर, शांत बनाना विश्व का सर्वश्रेष्ठ एवं सबसे क्लिष्ट कार्य है। मन चंचल होने का कारण राग-द्वेष है एवं मन स्थिर होने का कारण राग-द्वेष की निवृत्ति है।

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनो जलम्।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं तत्तत्वं नेतरो जनः।। (35) (समाधि तंत्र)

जिस पुरुष का मन रूपी जल राग-द्वेष, मोह, मद, क्रोध, लोभ, माया आदि की लहरों से चंचल नहीं है वह मनुष्य अपने आत्मा के वास्तविक स्वरूप को अपने निर्मल मन में देख लेता है। अन्य मनुष्य उस आत्मा के स्वरूप को नहीं देख पाता।

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।
धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रयेत्ततः।। (36)

मोह मिथ्यात्व और राग-द्वेष आदि के क्षोभ से रहित मन आत्मा का स्वभाव है और मोह तथा राग-द्वेष से व्याकुल मन आत्मा की भ्रांति यानि भ्रम है। इसलिये राग-द्वेष-मोह से रहित शुद्ध मन बनाना चाहिए, राग-द्वेष-मोह आदि दुर्भावों से मन को मलीन नहीं करना चाहिए।

अविद्याभ्यास संस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।
तदैव ज्ञान संस्कारैः स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते।। (37)

मन अज्ञान के अभ्यास के संस्कारों द्वारा अपने वश में न रहकर इन्द्रियों के विषय भोगों में फँस जाता है वही मन आत्मा और शरीर के भेद विज्ञान के संस्कारों से अपने आत्म स्वरूप में ठहर जाता है।

स्व-वैभव चिंतन से...

-आचार्यश्री कनकनंदी

(चाल : मन रे.....!, सायोनारा.....)

जिया रे! तू स्व-वैभव चिंतन करऽऽऽ
तेरा वैभव है आत्म-वैभव...उसका तू स्मरण/(कथन) करऽऽऽ...(स्थायी)...

तू हो! सच्चिदानंद (मय) आत्म स्वरूपी...अनंत ज्ञान-दर्श-सुख-वीर्यमयऽऽऽ

राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध शून्य...तन-मन-इंद्रिय रिक्तऽऽऽ
शुद्ध-बुद्ध-आनंद युक्तऽऽऽ...जिया...(1)...

तेरा ही चिंतन-मनन-ध्यान...अध्ययन व करो अध्यापनऽऽऽ
जिज्ञासा-समाधान व शोध-बोध...लेखन व करो प्रवचनऽऽऽ
इससे ही होगा तेरा उत्थानऽऽऽ...जिया...(2)...

इस हेतु भले अन्य ज्ञानार्जन कर...किन्तु लक्ष्य रहे स्व-स्वरूपऽऽऽ
स्व-स्वरूप रिक्त अन्य सभी तत्त्व...होते हैं पर या अनात्म तत्वऽऽऽ
परतत्व लीनता/(मोहित) ही है मिथ्यात्वऽऽऽ...जिया...(3)...

रागी-द्वेषी-मोही-कामी-क्रोधी-स्वार्थी...न जानते हैं तेरा स्वरूपऽऽऽ
वे तो सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि आसक्त...तन-मन-इंद्रियों को मानते स्वरूपऽऽऽ
इनसे विपरीत तेरा स्वरूपऽऽऽ...जिया...(4)...

इसलिए वे तुझे विपरीत माने...मोह-महा-मद से हो मदमस्तऽऽऽ
इनसे रखो तू माध्यस्थ भाव...उनसे भी न करो तू राग-द्वेषऽऽऽ
स्व-पर विश्व हित में हो चित्तऽऽऽ...जिया...(5)...

जन्मांध अंधे यथा सूर्य न देखते...नयन भी न देखते स्वयं कोऽऽऽ
अज्ञानी-मोही तथा न स्वयं को जानते...वे कैसे जानेंगे तुझकोऽऽऽ
तू तो अमूर्तिक सच्चिदानंदऽऽऽ...जिया...(6)...

स्व-वैभव चिंतन व ज्ञान-ध्यान से...स्व-वैभव होंगे विकसितऽऽऽ
राग-द्वेष-मोहादि विभाव नशेंगे...स्व-वैभव मिलेंगे परिपूर्णऽऽऽ
'कनक' बनोगे शुद्ध-बुद्ध-आनंदऽऽऽ...जिया...(7)...

चितरी, दिनांक 03.11.2017, अपराह्न 5.31

मेरी भावना-साधना-उपलब्धि

-आचार्यश्री कनकनंदी जी

(चाल : यमुना किनारे....., सायोनारा.....)

चिंतन करूँ किन्तु चिंता न करूँ, ऐसी भावना मैं करता हूँ।

स्व-पर-विश्व कल्याण की भावना, नवकोटि से मैं करता हूँ।।

समीक्षा करूँ किन्तु निंदा न करूँ, ऐसी भावना मैं करता हूँ।
हितकर सत्य सदा मैं बोलूँ, अहितकर सत्य भी नहीं बोलूँ।। (1)

स्व-पर गुण-दोषों से शिक्षा मैं लहूँ, स्व-पर दोष दूर हेतु यत्न मैं करूँ।
स्व-दोष मानूँ पर दोष न गहूँ, पर दोष हेतु मैं दोषी न बनूँ।।

श्रद्धा मैं करूँ अंधश्रद्धा मैं त्यागूँ, सनम्र सत्यग्राही जिज्ञासु बनूँ।
कट्टर-रूढ़ि-परंपरा-संकीर्णता त्यागूँ, व्यवहार सत्य से ले परम सत्य जानूँ/(मानूँ)।। (2)

ज्ञानी मैं बनूँ मिथ्याज्ञान मैं त्यागूँ, अनुभवपूर्ण ज्ञानी मैं बनूँ।
हठाग्रह-पूर्वाग्रह-जानकारी से परे, शोध-बोध-अनुभव मैं करूँ।।

चारित्र पालूँ सौम्य-शांति पालूँ, ढोंग-पाखण्ड-आडम्बर मैं त्यागूँ।
अधर्मी-कुधर्मी-विधर्मी प्रति भी, कुभावना से भाव-व्यवहार न करूँ।। (3)

धर्म मैं पालूँ ख्याति-पूजा मैं त्यागूँ, आत्मविशुद्धि हेतु ही साधना करूँ।
भीड़-प्रदर्शन व वर्चस्व बिना, निस्पृह-निराडम्बर साधना करूँ।।

हर विषय जानूँ सत्य-तथ्य पहचानूँ, हिताहित विवेक हेतु सभी मैं जानूँ।
किन्तु हित सत्य को ही स्वीकार करूँ, नकलची अहितकर सभी मैं त्यागूँ।। (4)

आत्महित मैं करूँ पर-अहित न करूँ, आत्म हितकर पर हित न करूँ।
आत्मप्रकाशी बनूँ पर प्रकाशी बनूँ, अज्ञानी होकर ज्ञान कैसे मैं दूँ?।।

(ज्ञान) सूर्य मैं बनूँ स्वतः प्रकाश फैले, ज्ञान पिपासु स्वतः ज्ञान ग्रहण करें।
तीर्थंकर मुनि सम मौन एकांत गहूँ, बाह्य प्रभावना हेतु संक्लेश न करूँ।। (5)

मनोरंजन परे आत्ममंजन/(आत्मरंजन) हेतु, लोकसंग्रह से परे लोकमंगल हेतु।
भेड़-भेड़िया (चाल) परे मौलिक-पावन हेतु, एकला भी चलकर लक्ष्य/(सत्य) पाने के हेतु।।

लक्ष्यानुसार संकल्पनिष्ठ मैं रहूँ, संकल्प-विकल्प संक्लेश त्यागूँ।
मतिश्रुतज्ञान से परिकल्पना करूँ, कपोलकल्पित मिथ्या भाव मैं त्यागूँ।। (6)

तन-मन-इंद्रियों का मैं सदुपयोग भी करूँ, समय-शक्ति-साधनों का प्रयोग करूँ।
किन्तु इससे परे स्व-की प्राप्ति मैं चाहूँ, चैतन्य चमत्कार स्वरूप स्वयं को चाहूँ।।

आत्मनिष्ठा व धैर्य-साहस युक्त, सरल-सहजता विनम्रता सहित।
मोह-क्षोभ रहित चैतन्य शक्ति युक्त, शुद्ध-बुद्ध-आनंद है 'कनक' का प्राप्य।। (7)

चितरी, दिनांक 11.11.2017, रात्रि 8.45

संवदेनशील होने के ढेर सारे फायदे भी हैं

संवेदशीनलता एक बेहतरीन और अनोखी चीज है। कभी-कभी संवेदशनील लोगों को यह अहसास ही नहीं होता कि वे कितने खुशनसीब हैं। अगर आप संवेदनशील नहीं हैं तो आप कभी एक सच्ची इंसान नहीं बन सकती। हालाँकि, एक संवेदनशील शख्स होना थोड़ा मुश्किल है लेकिन इस गुण के अपने कुछ फायदे भी हैं-

अंतर्ज्ञानी (इंट्यूटिव)-जरूरी है कि आप अपने इस व्यवहार को पसंद करे और खुद के लिए अच्छा महसूस करें। इंट्यूशन आपका आंतरिक गाइड होता है, जो आपको किसी भी एक्शन की पूरी तस्वीर दिखाने में मदद करता है। खुद के साथ यह गहरा रिश्ता आपको दूसरे लोगों को अलग तरह से समझना सिखाता हैं। साथ ही, ऐसे लोग समस्याओं के साथ बेहतर तरीके से डील करते हैं।

एक शोध द्वारा यह पता चला है कि विश्व भर में औसतन 30 प्रतिशत मनुष्य खुश रहता है तथा 40 प्रतिशत समय वह दुःखी ही रहता है। शेष 30 प्रतिशत समय मनुष्य उदासीन रहता है। इस दशा में उसे सुख-दुःख का अनुभव नहीं होता।

कोलंबिया की सिमोन फ्रासर यूनिवर्सिटी में 132 देशों के लोगों पर शोध किया गया। जिसमें पाया गया कि वे लोग जो दूसरों की सहायता में ज्यादा समय बिताते थे, वे ज्यादा सुखद मनःस्थितियों में थे।

सबकी परवाह-जो लोग ज्यादा संवेदनशील होते हैं, वे ज्यादा केयरिंग भी होते हैं। वे अपनी और दूसरों की काफी परवाह करते हैं। याद रखें कि जितना ज्यादा आप ध्यान रखेंगी और परवाह करेंगी, आप उतनी ही मजबूत होगी। संवेदनशील लोग, बेघर पशुओं की भी मदद करते हैं।

आंतरिक दुनिया से जुड़ाव-संवेदनशील लोगों के पास हर स्थिति के बारे

में एक खास नजरिया और भावना होती है। वह अपनी अंदर की आवाज पर ध्यान देते हैं और उसे कभी नजरअंदाज नहीं करते। अगर आप भी संवेदनशील हैं तो आप भी अपनी भावनाओं और आंतरिक मन से जुड़ी होंगी। यहीं वजह है कि आप कोई भी काम बहुत ही समझदारी और सावधानी के साथ करती हैं।

संवेदनशीलता-रचनात्मकता-अगर आप संवेदनशीलता है तो हो सकता है कि आप क्रिएटिव यानी रचनात्मकता भी हो। बहुत से संवेदनशील लोग इंट्रोवर्ट होते हैं और यही उनकी रचनात्मकता को बढ़ावा देता है। ऐसे लोगों के पास दुनिया को देखने और उसे समझने का एक अनोखा और रचनात्मक नजरिया होता है।

दूसरों की भावनाओं की कद्र-संवेदनशील लोग हमेशा दूसरों की भावनाओं की कद्र करते हैं। अगर आप भी ऐसा करती हैं तो जान ले कि यह आपका एक शक्तिशाली गुण है। हालाँकि, गुस्सैल लोगों से आने वाली नकारात्मक भावनाओं और डिस्ट्रेस से आपको सावधान भी रहना चाहिए।

सच्चा व्यक्तित्व-संवदेनशील लोग अपने व्यक्तित्व को लेकर वास्तविक होते हैं। वे कभी दिखावा नहीं करते और न ही अपने व्यक्तित्व को लेकर झूठ बोलते हैं। वे जैसे हैं, वैसे ही खुद को स्वीकार करते हैं। ईमानदारी उनका एक बहुत महत्वपूर्ण गुण होती है। ऐसे लोग खुले दिल के होते हैं।

संदर्भ-

स्व-हित करणीय

परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव।
अपकुर्वन्परस्याज्ञो दृश्यमानस्य लोकवत्।। (32)

O Witless one! thou art serving this visible show that is not thyself; thou shouldst now renounce dowing good to others and take to dowing good to thine own self!

हे भव्य! अविद्या अर्थात् मोह के कारण जो तुमने देहादि पर द्रव्यों का उपकार किया है अभी विद्या के बल पर उस परोपकार को त्याग करके आत्मानुग्रह प्रधान बनो। शरीर आदि परद्रव्य हैं, क्योंकि शरीर पुद्गल से निर्मित हैं। जिस प्रकार कि लोक में अज्ञान अवस्था में लोग दूसरों के उपकार करते हैं, परन्तु ज्ञान होने के बाद दूसरों

का उपकार त्याग करके स्व का उपकार करते है।

समीक्षा-इस श्लोक में आचार्य श्री ने लौकिक उदाहरण देकर यह समझाया कि जिस प्रकार लोक में बिना जाने शत्रु का भी उपकार कर लेते हैं परन्तु जब पता चल जाता है कि ये मेरा शत्रु है तब उसका उपकार छोड़कर आत्म-उपकार करते हैं, उसी प्रकार शरीर, धन सम्पति आदि जो परद्रव्य हैं, उसको मोही जीव अपना मानकर उसका संरक्षण संवर्द्धन करता है, परन्तु स्व-आत्म-द्रव्य को न जानता है, न मानता है, न उसका उपकार करता है। इसलिये दयालु परोपकारी आचार्य गुरूदेव भव्य को संबोधित करते हुये कहते हैं कि हे भव्य! तुम अनादिकाल से मोह से मोहित होकर स्व उपकार को भूलकर दूसरों के उपकार में ही लगे हुये हो। तुम अभी तक धोबी का काम, गधे का काम, गुलामी का काम करते आ रहे हो। जिस प्रकार धोबी दूसरों के गंदे कपड़े धोता रहता है उसी प्रकार तुमने भी दूसरों की गलती को देखकर उसको दूर करने में लगे हुए हो परन्तु स्वयं की गलती का भान तक तुम्हें नहीं है। जिस प्रकार गधा दूसरों का बोझ ढोता है उसी प्रकार तुम भी शरीर का, कुटुम्ब का, धन का, अभिमान ढो रहे हो, गधा अपने पीठ पर चन्दन की लकडी का भार केवल ढोता रहता है परन्तु चन्दन की सुगंधी तथा शीतलता का अनुभव नहीं करता है। इसी प्रकार जीव, शरीर, सम्पति कुटुम्ब का भार ढ़ोता रहता है। परन्तु आत्मा का आनन्द अनुभव नहीं करता है। वह उस भार को ही अपना सर्वस्व, गौरव, बडप्पन मान लेता है। जो अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि से धन कमाता है। उस धन के कारण वह स्वयं को बड़ा मान लेता है और दुसरे लोग भी उसको बडा मान लेते है। गुलाम जिस प्रकार मालिक के आधीन होकर उसके निर्देश के अनुसार दीन-हीन होकर मालिक की सेवा करता है। उसी प्रकार मोहीजीव शरीर, कुटुंब धन, संपति तथा राग द्वेष के गुलाम बनकर उसकी नौकरी करता है और यह सब करता हुआ भी स्वयं को श्रेष्ठ मान लेता है। जो ज्ञान वैराग्य से सम्पन्न होकर परिवार तथा वैभवादि त्यागकर स्व-आत्म-कल्याण करना चाहता है, उसे भी ऐसे मोही जीव-दीन हीन असहाय गरीब मान लेता है। इसलिए आचार्य श्री ने यहाँ कहा कि हे मोही! तुमने अनंत संसार में दूसरो के लिए इतना रोया इतना आंसु बहाया कि यदि उस आँसु को इकट्ठा किया जाये तो अनेक समुद्र की जल-राशि से अधिक हो जायेगा अनंत बार तुम दुसरों के

गुलाम, भाई, पिता, पुत्र, स्त्री आदि बने और दुसरे भी तुम्हारे अनन्त बार बने। इन सबके उपकार के लिए तुमने जितना परिश्रम किया। उसका अनंतवा भाग भी स्वोपकार में लगाओगे तो तुम तीनलोक का स्वामी अर्थात् सिद्ध भगवान बन जाओगे। इसलिए कुन्दकुन्दचार्य देव ने कहा है-''आदहिदं कादव्वं'' अर्थात् आत्महित अच्छी तरह से समग्रता से करना चाहिए। कहा भी है

पी ओसिथणच्छीरं अणंतजम्मंतराइं जणजीणं।
अण्णण्णाण महाजस सायस्सलिलादु अहिययरं।। (18) अ.पा.पृ. 265

हे महाशय के धारक मुनि! तूने अनन्त जन्मों में अन्य-अन्य माताओं के स्तन का इतना दूध पिया है जो समुद्र के जल से भी अत्यन्त अधिक है - अनन्तगुणित है।

तुह मरणे दुवरेणं अण्णाणं अणेय जणणीणं।
रूण्णाण णयणीरं सायरसलिलादु अहिययरं।। (19)

हे जीव! तेरा मरण होने पर दुःख से रोती हुई अन्य-अन्य अनेक माताओं का अश्रुजल समुद के जल से अत्यन्त अधिक है।

भवसायरे अणंते छिण्णुज्झिय के सणहरणालट्ठी।
पुंजेइ जइ को वि जार हवदि य गिरिसमधिया रासी।। (20)

हे जीव! तूने अनन्त संसार सागर में जिन केश, नख, नाभिनाल और हड्डियों को काटने के पश्चात् छोड़ा है यदि कोई यक्ष उन्हें इकट्ठा करे तो उनकी राशि पर्वत से भी अधिक हो जाये।

मादुपिदुसजणसंबंधिणो य सव्वे वि अत्तणो अण्णे।
इह तोग बंधवा ते ण य परलोगं समं णेक्षि।। (720) मू.चा.पृ. 6

माता-पिता और स्वजन सम्बन्धी लोग ये सभी आत्मा से भिन्न हैं। वे इस लोक में तो बांधव है किन्तु परलोक में तेरे साथ नहीं जाते हैं।

अण्णो अण्णं सोयदि मदोत्ति मम णाहओत्ति मण्णंतो।
अत्ताणं ण दु सोवदि संसारमहण्णवे वुड्डं।। (703)

वह जो मर गया, मेरा स्वामी है वैसा मानता हुआ अन्य जीव अन्य का शोक करता है किन्तु संसार-रूपी महासमुद्र में डूबे हुए अपने आत्मा का शोक नहीं करता है।

अण्णं इमं सरीरादिगं पि जं होज बाहिरं दव्वं।

णाणं दंसणमादात्ति एवं चिंतेह अण्णत्तं।। (704)

यह शरीर आदि भी अन्य है पुनः जो बाह्य द्रव्य हैं वे तो अन्य हैं ही। आत्मा ज्ञानदर्शन स्वरूप है इस तरह अन्यत्व का चिन्तन करो।

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा कामदुहा धेणू अप्पा मे नन्दणं वणं।। (36)

''मेरी अपनी आत्मा ही वेतरणी नदी है, कूट-शाल्मलि वृक्ष है, काम-दुधा-धेनु है तथा नन्दन वन है।''

अप्पा कता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुपट्ठिय - सुपट्ठिओ।। (37)

''आत्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्त्ता है और विकर्त्ता-भोक्ता है। सत् प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही शत्रु है।''

आचार्य भगवन् श्री कनककनंदी जी गुरुदेव

-ब्र. रोहित भैया

(चाल : राधा ही बावरी.....(मराठी चाल))

कनककनंदी गुरुवर को कोई न समझ सकते।
निःस्वार्थ भाव से आशीर्वाद है गुरु सबको देते।
ये कनककनंदी के आचरण प्यारे, सबको पुलकित करे।
कनक गुरुवर अनूठे।। (ध्रुव)

कनकंदी गुरुवर के, वात्सल्य प्रभावित करते।
इनकी सरलता ही, सभी को महकाते।।
ये निस्पृहता है गुरुवर की जो सबको हर्षित करती।
ये भक्त-शिष्यगण प्रसन्न होकर प्रभावना है करते।। (1)

ये कनककनंदी के...

आत्मा को जानने का, स्वरूप गुरु ने बताया।
मिथ्यात्व से हटकर, सम्यक् भाव सिखाया।।

ये आत्मज्ञान का भाव जगा है गुरु के आशीष से।
राग-द्वेष से विहिन होना, है धर्म बताया गुरु ने।। (2)

ये कनककनंदी के...

अति प्रकृष्ट भाषा है, कनक गुरुवर की।
अयाचक पद्धति है, पूरे श्रीसंघ की।।
ख्याति-पूजा से दूर होना, है भावना सभी की।
ऐसी भावना कही न होती, है गुरुवर के संघ की।। (3)

ये कनककनंदी के...

चितरी, दिनांक 24.11.2017, अपराह्न 5.30

तेरा धर्म तुझमें ही स्थित (मेरा स्वधर्म 'मैं' ही हूँ)

-आचार्य कनककनंदी

(चाल : क्या मिलिए ऐसे लोगों से....., तुम दिल की....., सायोनारा.....)

तेरा धर्म स्थित तुझमें ही, तुझे छोड़कर अन्यत्र नहीं संभव।
वस्तु स्वभाव धर्म होने से, तू ही तेरा वस्तु स्वरूप धर्म।।

गुणी-गुणी अभेद होने से, तेरे गुण तुझमें ही स्थित।
गुण पर्याय द्रव्य होने से, तुझमें ही तेरे गुण पर्याय स्थित।। (1)

सद् द्रव्य लक्षण होने से, तेरे सत्य भी तुझमें स्थित।
सत्य को तू स्वयं में प्रगट कर, तेरे धर्म तुझमें होंगे प्रगट।।

तेरा द्रव्य है सच्चिदानंदमय, इसे ही प्रगटता है तेरा धर्म।
तिल में तैल दूध में घृत सम, तेरा धर्म भी है तुझमें स्थित।। (2)

घानी अथवा मथनी के समान, द्रव्य क्षेत्र काल होते साधन।
धार्मिक बाह्य क्रियाकाण्ड सभी, धर्म प्रगट हेतु होते माध्यम।।

स्वयं का विश्वास करने पर ही, होगा तुझमें आत्मविश्वास।
स्वयं का ज्ञान करने पर ही, होगा तुझमें आत्म का ज्ञान।। (3)

आत्मा का आचरण करने पर ही, होगा तुझमें आत्म रमण।
इस हेतु त्याग करना होगा, विभाव/(विधर्म) रूप सभी परिणमन।।

राग द्वेष मोह काम क्रोध लोभ, ईर्ष्या तृष्णा घृणा आदि विभाव/(विधर्म)।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश-द्वंद, आकर्षण-विकर्षण-वर्चस्व भाव।। (4)

पूर्वाग्रह व हठाग्रह सहित, संकीर्ण-कट्टर सह पंथ-मत।
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि सहित, त्याग करना होगा सभी असत्य।।

मोह त्याग से बनोगे आत्मविश्वासी, अज्ञान त्याग से तू आत्मज्ञानी।
विभाव त्याग से शुद्धात्म रमण, जिससे बनोगे तू स्वयंधर्मी।। (5)

क्रोध त्याग से बनोगे क्षमाधर्मी, मान त्याग से मार्दवधर्मी।
माया त्याग से बनोगे आर्जवधर्मी, लोभ त्याग से शौचधर्मी।।

असत्य त्याग से बनोगे सत्यधर्मी, असंयम त्याग से संयमधर्मी।
इच्छा त्याग से बनोगे तपधर्मी, परिग्रह त्याग से त्यागधर्मी।। (6)

परभाव त्याग से आकिंचन्यधर्मी, अब्रह्म त्याग से ब्रह्मचर्यधर्मी।
समस्त धर्म तो तुझमें ही प्रगट, अतएव तू ही तेरा पूर्णधर्मी।।

यह ही है कार्य कारण संबंध, यह ही अकार्य कारण स्वभाव।
निमित्त उपादान संबंध यह, निश्चय-व्यवहार साध्य-साधन।। (7)

अन्य सभी है अज्ञान-मोह, अधर्म-कुधर्म या विधर्म।
इनसे परे बनो शुद्ध-बुद्ध-आनंद, यह ही 'कनक' तेरा स्वधर्म।।

इसलिए तू ही तेरा परम तीर्थ, मन्दिर-मूर्ति-पंथ-मत।
तू ही तेरा कर्त्ता-धर्त्ता-विधाता, इसकी रक्षा है तेरा परम धर्म।। (8)

चितरी, दिनांक 24.11.2017, रात्रि 8.45
(यह कविता ब्र. अलका (कोबा) के कारण बनी।)